

[www.freehindipdfbooks.com](http://www.freehindipdfbooks.com)

#### अध्याय 4 नागरकवृन्त प्रकरण (रसिकजन के कार्य)

१लोक-१. गृहीतविद्यः प्रतिग्रहजयक्रयनिशाधिगतैर्थन्वयागतैरुभयैर्वा गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरकमवृतं वर्तत॥१॥

अर्थ- विद्या अध्ययन के समय ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इसके बाद पैतृक संपत्ति या दान, विजय, व्यापार और श्रम आदि द्वारा धन एकत्र करके विवाह करके गृह प्रवेश करना चाहिए। इसके बाद सामान्य नागरिकों की तरह जीवन व्यतीत करना चाहिए।

व्याख्या- कामसूत्र तथा उसकी अंगभूत विद्याएं ही विद्या प्राप्त करने का मुख्य अर्थ हैं। आचार्य वात्स्यायन के अनुसार अपहरण बलात्कार द्वारा स्त्री को प्राप्त करने की कोशिश अव्यवहारिक तथा असामाजिक है। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कामशास्त्र तथा 64 कलाओं का अध्ययन करने के बाद ही ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

विवाह करने के बाद घर चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती है जिसके लिए उचित उपाय करने चाहिए। इसीलिए वात्स्यायन ने स्वयं कहा है कि कामसूत्र और 64 कलाओं की शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही अपनी कुशलता और श्रम के द्वारा धन कमायें। धन कमाने के बाद ही विवाह करें। इसके अलावा पैतृक संपत्ति का प्रयोग भी कर सकते हैं। ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के बाद सभ्य लोगों के समान जीवनयापन करें।

१लोक-२. नगरे पतने खर्वटे महित वा सज्जनाश्रये स्थानम्। यात्रावशाद्वा॥२॥

अर्थ- विवाह करने के बाद नागरिकों को नगर में, खर्वट में, पतन में या महत में सभ्य लोगों के बीच निवास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जीवन चलाने के लिए परदेश में रह सकते हैं।

१लोक-३. तत्र भवनमासत्रोदं वृक्षवाटिकावद् द्विभक्तकर्मक्षं द्विवास-गृहं कारयेत्॥३॥

अर्थ- वहां जल के निकट वृक्षवाटिका के पास घर का निर्माण करें जिसमें रहने के लिए दो वासस्थान रखना चाहिए। एक बहि प्रकोष्ठ, दूसरा अंतः प्रकोष्ठ।

आचार्य वात्स्यायन नागरिकों को ऐसे स्थान पर रहने की सलाह देते हैं जहां पर जीवन संबंधी सभी उपयोगी साधन उपलब्ध हो। इस प्रकार की सुविधा पतन (राजधानी) में, नगरों (महतीपुरी) में, खर्वट (तहसील) में तथा महत अर्थात जिले के केन्द्रों में आसानी से उपलब्ध होते हैं।

इन साधनों में जहां पर दैनिक उपयोग और उपभोग की चीजें उपेक्षित हैं। वहीं लोगों को इससे अधिक प्राकृतिक सौंदर्य की अपेक्षा होती है। इसलिए लोग घरों का निर्माण प्रकृति के आस-पास करवाते हैं।

१लोक-४. बाह्ये च वासगृहे सुश्रलक्षणमुभयोपधानं मध्ये विनतं शुक्लोत्तरच्छदं शयनीयं स्यात्। प्रतिशस्त्रिका च। तस्य शिरोभागे कूर्चस्थानम् वेदिका च। तत्र रात्रिशेषमनलेपनं माल्यं सिक्थ करण्डकं सौगन्धिकपुटिका मातुलुडगत्वचस्ताम्बूलाहनि च स्यः। भूमौ पतदग्रहः नागदंतावसक्ता वीणा। चित्रफलकम्। वर्तिकासमुद्रकः। य कश्चतपुस्तकः कुरण्डकामालाश्च नातिदूरे भूमौ वृत्तास्तरणं समस्तकम्। आर्कषकफलकं द्यूतफलकं च। तस्य बहिः क्रीडाशकुनिपञ्जराणि। एकांते च तक्षतक्षणस्थानमन्यासां च क्रीडानाम्। स्वास्तीर्णा पेढ़खदोला वृक्षवाटिकायां सप्रच्छाया। स्थण्डिलपीठिका च सकुसुमेति भवनविन्यासः॥४॥

अर्थ- यहां बहिःप्रकोष्ठ की सजावट का निर्देश दिया गया है-

घर के बाहरी प्रकोष्ठ (जिसमें नागरिक स्वयं रहता है) में अधिक नर्म, मुलायम, सुगंधित बिस्तर लगा होना चाहिए। सिर तथा पैर दोनों तरफ तकिये लगे होने चाहिए। पलंग बीच में से झुकी होनी चाहिए। पलंग के ऊपर साफ, स्वच्छ चादर होनी चाहिए तथा ऊपर मच्छरदानी तनी होनी चाहिए।

उसी पलंग के बराबर में उसी के समान एक और पलंग लगी होनी चाहिए जोकि सेक्स क्रिया के लिए है। उस पलंग के सिरहाने पर पलंग की ऊँचाई के बराबर वेदिका रखी हो। वेदिका में रात का बचा हुआ लेपन, फूल-मालाएं, मोमबत्ती, अगरबत्ती, मातृलुंग वृक्ष की छाल तथा पान रखे हुए होने चाहिए। पलंग के पास जमीन पर पीकदान (थूकने का बर्तन) रखा हो। हाथी-दांत की खूंटी पर टंगी हुई वीणा, चित्र बनाने का त्रिफलक, तुलिका तथा रंग के डिब्बे, सजी हुई किताबें और शीघ्र न मुरझाने वाली कुरण्टक पुष्प की माला हो।

पलंग के पास की जमीन पर एक गोल आसन बिछा होना चाहिए जिसके पीछे की तरफ सिर तथा पीठ के लिए एक गाव तकिया अथवा मनसद हो। बाहरी प्रकोष्ठ के बाहर खूंटियों पर पालतू पक्षियों के पिंजरे टंग रहे हो और किसी एकांत स्थान पर अपद्रव्य बनाने तथा बढ़ईगीरी का कार्य करने तथा अन्य प्रकार के आमोद-प्रमोद के लिए स्थान हो। वृक्षवाटिका भी साफ, सुंदर और सुविधायुक्त होना चाहिए।

**१लोक-५. स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः गृहीतदंतधावनः, मात्रयानुलेपनं धूपं स्त्रजमिति च गृहीत्वा सिक्थकमलकतं च, दृष्टवादर्शं मुखम्, गृहीत्मुखावासताम्बूलः, कार्याण्यनुतिष्ठेत॥५॥**

अर्थ- इस सूत्र में नागरिक की दिन तथा रात की क्रियाओं का वर्णन किया गया है। सबसे पहले उस नागरिक को सुबह जागकर, शौच आदि क्रियाओं से फ्री होकर, दांतों को साफ करके उचित मात्रा में मस्तक में चंदन आदि का लेप करके, बालों को धूप से सुवासित कर तथा सुगंधित माला आदि को पहनकर सिक्थम (मोम) तथा अलरकतक (अलता) का उपयोग करके शीशे में चेहरे को देखकर सुगंधित तम्बाकू आदि खाकर दैनिक कार्यों को करना चाहिए।

**१लोक-६. नित्यं स्नानम्। द्वितीयकमुत्सादनम्। तृतीयकः फेनकः। चतुर्थकमायुष्यम्। पञ्चमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम्। सातत्याच्च संवृतकक्षास्वेदापनोदः॥६॥**

अर्थ- नियमित स्नान करें, हर दूसरे दिन पूरे शरीर की मालिश करें। तीसरे दिन साबुन का प्रयोग करें। चौथे दिन दाढ़ी तथा मूँछों के बाल कटवायें तथा पांचवे दिन या दसवें दिन गुप्त अंगों के बाल सावधानी से काटें। ढकी हुई कांखों के पसीनों को हमेशा सुगंधित पाउडर का प्रयोग करके सुखायें।

कामसूत्र को पढ़ने से जात होता है कि प्राचीन काल में भारत के नागरिक विद्या तथा कला का उपयोग जिस सावधानी के साथ करता था, उस प्रकार वह धन का उपयोग नहीं करता था। उसकी दिनचर्या से प्रकट होता है कि वह सुबह जागने के बाद हाथ-मुँह धोकर दातून से दांतों को साफ करता था। उसकी दातून भी कुछ विशेष प्रकार की होती थी जिसका वर्णन वृहतसंहिता में मिलता है-

सर्वप्रथम दातून को उसके पुरोहित एक सप्ताह पहले सुगंधित द्रव्यों से सुवासित करने की प्रक्रिया शुरू कर देते थे। इसके लिए दातून को हरड़युक्त तरल में एक सप्ताह तक भिगोकर रख देते थे। इसके बाद इलायची, दालचीनी, तेजपात, अंजन, शहद और कालीमिर्च से सुवासित जल में डुबोते थे। इस प्रकार से तैयार की गयी दातून को मंगलदायिनी समझा जाता था। उस समय के लोग दातून का उपयोग सिर्फ दांतों की सफाई के लिए न करके

मांगलिक कार्यों के लिए भी किया करते थे। इसलिए वे अपने पुरोहितों से यह पूछ लेते थे कि कौन-से पेड़ की दातून किस विधि से करें।

दातून के बाद लोग लेप का प्रयोग करते थे। कामसूत्र के विशेषज्ञों के अनुसार शरीर पर सिर्फ चंदन का ही लेप लगाना चाहिए। विभिन्न ग्रंथों में यह बताया गया है कि चंदन को शरीर पर उल्टा-सीधा लेप लेना नियमों के विपरीत है।

प्राचीन समय में लोग चंदन के अतिरिक्त अन्य विभिन्न प्रकार के द्रव्यों के भी अनुलेप तैयार करते थे। इनमें कस्तूरी, अग्रु और केसर आदि के साथ दूध अथवा मलाई के लेप प्रमुख हैं। इस प्रकार के लेपों की सुगंध काफी देर तक होती है। इन लेपों के प्रयोग से शरीर के अंग स्निग्ध और चिकने होते हैं।

अनुलेपन के बाद केशों को धूप से धूपित करने की प्रक्रिया की जाती थी, ऐसा करने पर बाल नहीं उड़ते थे, बाल सफेद नहीं होते हैं तथा चिकने और मुलायम बने रहते हैं। वराहमिहिर के ग्रंथ वृहत्संहिता में उल्लेख मिलता है कि अच्छे से अच्छे कपड़े पहनों, सुगंधित माला धारण करो तथा कीमती गहनों से अपने शरीर के अंगों को सजा लो। लेकिन यदि बाल सफेद हो गये हो तो सभी आभूषण फीके पड़ जाएंगे। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में भारत के निवासी बालों को काला बनाये रखने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते थे।

वृहत्संहिता के अंतर्गत बालों को धूप देने की निम्न विधि बतायी गई है। कपूर तथा केसर या कस्तूरी से सुगंधित उतारी जाती थी, उस सुगंधि से बालों को सुवासित करके कुछ देर तक उन्हें छोड़ दिया जाता है। इसके बाद स्नान किया जाता था।

बालों के सुवासित हो जाने के बाद लोग फूलों की माला धारण करते थे। माला को बनाने और फूलों के चुनाव में भी उसकी रुचि होती थी। उस समय के लोग चम्पाजुही और मालती आदि फूलों की मालाएं धारण करते थे लेकिन सेक्स क्रिया करने के समय विशेष प्रकार से तैयार की गयी माला धारण करते थे ताकि सेक्स के दौरान आलिंगन, चुंबन आदि के समय फूल गिरकर मुरझाएं नहीं।

इसके बाद वह शीशे में अपना मुँह देखता था। प्राचीन काल के धनी लोगों के घरों में कांच के शीशों का उपयोग नहीं होता है। सोने अथवा चांदी के शीशों का उपयोग किया जाता है। शीशे में चेहरा देखने के बाद लोग पान खाते हैं।

भारतीय संस्कृति में ताम्बूल को सांस्कृतिक द्रव्य माना जाता है। ताम्बूल का उपयोग साधारण स्वागत समारोह से लेकर देवताओं की पूजा तक में किया जाता है। वराहमिहिर के ग्रंथ वृहत्संहिता में उल्लेख किया गया है कि ताम्बूल (पान) के सेवन से मुँह में चमक बढ़ती है तथा सुगंध प्राप्त होती है, आवाज में मधुरता आती है। अनुराग में भी वृद्धि होती है। चेहरे की सुंदरता भी बढ़ती है तथा कफ जनित विकार दूर होते हैं।

स्कंदपुराण के कई अध्यायों के अंतर्गत ताम्बूल का विभिन्न तरीके से वर्णन किया गया है। ताम्बूल का बीड़ा लगाना तथा ताम्बूल खाना अपने आप में एक बहुत बड़ी कला है। भारत में प्राचीन काल में धनी लोगों के यहां ताम्बूल वाहिकाएं इस कला की विशेष मर्मज हुआ करती थी। ताम्बूल का बीड़ा लगाने की विधि का वर्णन करते हुए वराहमिहिर ने कहा है कि- सुपारी, कत्था तथा चूना का उपयोग मुख्य रूप से ताम्बूल में होता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के सुगंधित पदार्थ और मसाले आदि भी छोड़े जाते हैं।

ताम्बूल के साथ उपयोग किये जाने वाले कथा, चूना तथा सुपारी की मात्रा संतुलित होनी चाहिए। यदि ताम्बूल में कथा की मात्रा अधिक हो जाती है तो लाली कालिमा में बदल जाती है, होंठों का रंग भद्दा हो जाता है। यदि सुपारी की मात्रा अधिक हो जाती है तो पान की लाली फीकी पड़ जाती है तथा होंठों की सुंदरता बिगड़ जाती है। पान में चूने की अधिक मात्रा होने से जीभ कट जाती है तथा मुँह का सुगंध बिगड़ जाता है। यदि पान के पत्तियों की मात्रा अधिक हो तो पान की सुगंध खराब हो जाती है। इसलिए रात के पान में पत्ते की संख्या अधिक होनी चाहिए तथा दिन में सुपारी की मात्रा अधिक होनी चाहिए। पान का सेवन करने के बाद लोग अपने कार्यों में लग जाते थे।

आचार्य वात्स्यायन ने स्नान करने के बारे में कोई भी वर्णन नहीं किया है। इसका कारण यह है कि उस समय स्नान करने की कोई भी प्रचलित विधि नहीं थी तथा उसका कोई भी विशेष महत्व नहीं था।

हमारे देश में प्राचीन काल में लोग किस प्रकार स्नान करते थे। इसकी जानकारी प्राचीन, काव्यों, नाटकों, कथा-ग्रंथों में बहुत अधिक मात्रा में मिलती है। कादम्बरी में स्नान करने की विधि का वर्णन इस प्रकार से किया गया है।

लोग दोपहर से थोड़े समय पहले कार्यों को निपटाकर स्नान करने के लिए तैयार हो जाते थे। स्नान करने से पहले लोग कुछ हल्के व्यायाम करते थे। व्यायाम करने के बाद सोने-चांदी के बर्तनों से स्नान करते थे। स्नान के समय लोग अपनी सेविकाओं से शरीर की मालिश किसी सुगंधित तेल से कराते थे तथा बालों में आंवले का तेल लगाते थे।

स्नान के दौरान लोग अपनी गर्दन की मालिश दिमागी तंतुओं को स्वस्थ बनाने के लिए करते थे। स्नान करने के बाद लोग शरीर को साफ कपड़े से पोछकर कपड़े पहनता था। इसके बाद वह पूजाघर में जा करके शाम की पूजा का उपासना करता था।

कामसूत्र में वर्णित स्नान की विधि व्यवहारिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अधिक उपयोगी होती है। वैसे तो स्नान प्रतिदिन करना चाहिए लेकिन शरीर का उत्सादन एक-एक दिन का अंतर करके करना चाहिए। शरीर की स्वच्छता तथा कोमलता के लिए साबुन का उपयोग अवश्य ही करना चाहिए। लेकिन साबुन का उपयोग प्रतिदिन न करके हर तीसरे दिन करना चाहिए।

उस समय के लोग अपने दांतों, नाखूनों और बालों की सफाई बहुत अच्छी तरह से करते थे। नाखूनों के काटने की कला की चर्चा वैदिक कालीन साहित्य में भी मिलती है। संस्कृत साहित्य के अध्ययन से जात होता है कि लोग नाखूनों को त्रिकोणाकार, चंद्राकार, दांतों के समान तथा अन्य विभिन्न आकृतियों में काटते थे। कुछ लोगों को लंबे नाखून पसंद थे। कुछ लोगों को छोटे आकार के तो कुछ लोगों को मध्यम आकार के नाखून रखने के शौक था।

आचार्य वात्स्यायन के अनुसार हर चौथे दिन पर सेविंग करना चाहिए। भारत में हजामत (सेविंग करना) करने तथा नाखून काटने की प्रथा बहुत ही पुरानी है। वैदिक काल में भी लोग हजामत (सेविंग करना) तथा नाखून पर विशेष ध्यान देते हैं।

वैदिक साहित्य के अंतर्गत क्षुर और नखकृन्तक शब्द का प्रयोग से ही प्रमाणित होता है। ऋग्वेद तथा उसके बाद के साहित्य में नाखून को श्मशु कहा जाता है तथा सिर के बालों को केश कहते हैं। यजुर्वेद, अथर्वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में सिर के बालों का वर्णन मिलता है। वेदों का अध्ययन करने पर जात होता है कि वैदिक काल में आर्यों में बालों के बारे में विभिन्न प्रयोग मिलते हैं। अथर्ववेद के अंतर्गत विभिन्न मंत्र ऐसे होते हैं जिनमें बालों के बढ़ने के बारे में औषधियों का वर्णन किया गया है लेकिन ऐसे प्रयोग सिर्फ औरतों के लिए ही हैं।

अधिकांश ऋषि-मुनि सिर पर लंबे बाल रखते थे तथा बालों को विभिन्न तरीके से गूंथकर रखते थे। कुछ ऋषि-मुनि बालों का जूँड़ा बनाकर रखते थे तो कुछ बालों को समेटकर रखते थे। इसके अलावा कुछ ऋषि-मुनि बालों को कपाल की ओर झुकाकर बांधते हैं।

इस प्रकार के बालों को वेदों में कपर्द के नाम से जाना जाता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर युवती को “चतुष्पर्द” तथा एक स्थान पर सिनी वाली देवी को सुकपर्दा कहा गया है। इसी प्रकार स्त्रियां भी बालों को विशेष प्रकार से बालों को संवारती हैं।

ऋग्वेद में वशिष्ठ ऋषियों को दक्षिणतः कपर्दा अर्थात् दाहिनी तरफ जटा वाले कहा जाता है। कुछ देवता और ऋषि-मुनि लंबे बाल रखते हैं लेकिन बालों में गांठ नहीं बांधने देते थे, उन्हें पुलस्ति के नाम से जाना जाता है। जो देवता और ऋषि-मुनि बाल, दाढ़ी और मूँछ बढ़ाये रहते हैं उन्हें ऋग्वेद में मोटी दाढ़ी और मूँछ वाला कहा गया है।

#### १लोक-७. पूर्वाहवयोभोजनम्। सायं चारायणस्य॥७॥

अर्थ- स्नान करने के बाद भोजन तथा दिन में सोने का विधान-

भोजन दोपहर के पहले और दोपहर के बाद दो बार करना चाहिए। लेकिन आचार्य चारायण के अनुसार दूसरा भोजन शाम के समय का ही उपयोगी होता है।

१लोक-८. भोजनानन्तरं शुक्सारिकाप्रलापनव्यापारजः। लावककुकुटमेषयुद्धानि तास्ताश्च कला कीडः।

पीठमर्दविदूषकायता व्यापाराः दिवाशश्या च॥८॥

अर्थ- भोजन करने के बाद लोग तोता-मैना को बोलते और पढ़ाते थे, उनसे बाते करते थे, लावक तथा मुर्गों की लड़ाई देखना तथा विभिन्न प्रकार की कलाओं और कीड़ों द्वारा मनोरंजन करना तथा उनके प्रिय कार्यों को मददगार पीठमर्द, विट तथा विदूषक के सुपुर्द किये गये कार्यों की ओर ध्यान देना चाहिए। इन सभी कार्यों के उपरांत सोये।

प्राचीन काल में भारत के नागरिक क्या खाते थे। इसके बारे में प्रबंधकोष, हर्ष चरित्र, कादम्बरी आदि ग्रंथों के वर्णनों से हो जाती है।

कादम्बरी का अध्ययन करने से यह जानकारी प्राप्त होती है कि उस समय के भोजन में सभी तरह के खाने एवं पीने योग्य पदार्थ शामिल होते हैं। इनमें गेहूं, चावल, जौ, चना, दाल, धी और मांस आदि सभी चीजें रसोई में प्रयोग की जाती थीं। भोजन, नमकीन पदार्थों से शुरू किया जाता है तथा मिठाइयों से समाप्त होता था।

भोजन के बाद लोग सुक-सारिकाओं से बातें करते थे। प्राचीन काल में भारत में सुक-सारिकाओं का सम्मान राजमहल से लेकर ऋषि-मुनियों के आश्रम तक था।

#### १लोक (9)- गृहीतप्रसाधनस्यापराहणे गोष्ठीविहाराः॥

अर्थ- इसके दिवाशयन के बाद तीसरे पहर (शाम के समय) की दिनचर्या बताई जाती है- तीसरे पहर (शाम के समय) वसालंकार से विमंडित नागरक गोष्ठी-विहारों में मौजूद हो।

**१८ोक (10)- प्रदोषे च संगीतकानि। तदन्ते च प्रसाधिते वासगृहे संजारितसुरभिधूपे ससहायस्य शश्यायामभिसारिकाणां प्रतीक्षणम्।**

अर्थ- तथा शाम के समय संगीत की महफिल में शामिल होने के बाद सजे हुए वासगृह में अपने सहायकों के साथ बैठकर अभिसारिका के आने का इंतजार करें।

**१९ोक (11)- दूतीनां प्रेषणम्, स्वयं वा गमनम्॥**

अर्थ- देर हो जाने पर दूती को बुलाने के लिए भेजे या स्वयं ही उसे बुलाने जाएं।

**२०ोक (12)- आगतानां च मनोदैररालापैरुपचारैश्च ससहायस्योपक्रमाः॥**

अर्थ- आई हुई नायिकाओं को दोस्तों के साथ अच्छी बातचीत और रसमय बर्ताव करके सम्मानित करें।

**२१ोक (13)- वर्षप्रमृष्टनेपथ्यानां दुर्दिनाभिसारिकाणां स्वयमेव पुनर्मण्डनम्, मित्रजनेन वा परिचरणमित्याहोरात्रिकम्॥**

अर्थ- अगर बारिश के कारण नायिका के कपड़े भीग जाते हैं तो स्वयं ही उसके कपड़े बदलकर उसका साज-शृंगार करें और मित्रों से सहायता लें। इस तरह से नागरक की दिनचर्यों तथा रात्रिचर्यों समाप्त होती है।

आचार्य वात्स्यायन नागरक की दिनचर्यों के बारे में बताते हुए उसे सजध्ज कर गोष्ठी विहार में जाने की सलाह दे देते हैं। प्रसाधन से तात्पर्य साज-शृंगार से है जो कपड़ों और अलंकारों के द्वारा पूरा माना जाता है। प्राचीन भारत के नागरिक के वस्त्रालंकार किस प्रकार के थे। इसका अंदाजा पुरानी मुर्तियों के द्वारा किया जा सकता है।

भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र इसके बारे में कुछ संकेत किए हैं। उनके मुताबिक, अभिजात्य नागरिक क्षौभ, कार्पास, कौषेय तथा शंगव 4 तरह के कपड़े पहनते हैं। अलसी के रेशों को निकालकर उनसे जो कपड़े बनाए जाते थे, उनको क्षौम कहा जाता था।

क्षौम के कपड़ों को छाल से भी बनाया जाता था। कपास (रुई) से बने कपड़े कोशेय तथा ऊन के बने हुए कपड़े रागंव कहलाते थे। यह चारों प्रकार से कपड़े, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य तथा आरोप्य। इन प्रकारों से पहने जाते थे। साढ़ी, पगड़ी आदि निबन्धनीय कहलाते थे। चोलक तथा चोली प्रक्षेप्य और उत्तरीय, चादर, दुपट्टा आदि आरोप्य थे।

इस तरह के कपड़े पहनने के बाद नागरिक अलंकार धारण करता था। वराहमिहिर ने 13 तरह के रत्नों तथा 9 तरह के सोने से बने गहनों का उल्लेख वृहत्संहिता के अंतर्गत किया है। वज्रमुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनीली, वैदूर्य, पुष्पराग, कंकेतन, पुलक, रुधिरक्ष, भीष्म, स्फटिक तता प्रवाल इन 13 प्रकार के जवाहरातों से नागरिक के कई अलंकार बनते हैं।

जाम्बूनद, शातकौम्भ, हाटक, वेटक, श्रृंगी, शुक्तिज, जातरूप, रसविद्ध तथा आकरउद्धृत- इन 9 तरह के सोने की जातियों और रत्नों को मिलाकर निम्नलिखित अलंकार बने होते थे।

आवेद्य, निबन्धनीय, प्रक्षेप्य, आरोप्य। अंग को छेदकर पहने जाने वाले गहने आवेद्य कहलाते हैं। अंगद वेणी, शिखाददिका, श्रोणी सूत्र, चूड़ामणि आदि बांधकर पहने जाने वाले गहने निबन्धलीय के नाम से भी जाने जाते हैं।

अर्निका कटक, वलय, मंजीर आदि अंग में डालकर पहने जाने वाले अलंकार प्रक्षेप्य कहा जाता है। हार नक्षत्रमालिका आदि आरोपित किए जाने वाले गहने आरोप्य कहलाते हैं।

रत्न अलंकारों तथा कपड़ों को पहनने के बाद माल्य-अलंकार धारण करता था। वह माल्य 8 प्रकार के होते थे। उद्धर्वित, विवत, संघाट्य ग्रंथिमत, अवलंबित, मुक्तक, मंजरी तथा स्तवक। मालाओं को पहनने के बाद वह मंडन द्रव्यों से मंडित होता था।

कस्तूरी, कुंकुम, चंदन, कर्पूर, अगुरु, कुलक, दंतसम पटवास सहकार, बैल, तांबुल, अलकत, अंजन, गोरोचन आदि उस समय के मंडन द्रव्य थे। इन द्रव्यों की सहायता से नागरक भूधटना, केश रचना आदि योजनामय अलंकार तथा देश-काल की परिस्थिति के अनुरूप श्रमजल, मद्य-मद आदि जन्य और दूर्वा, अशोक, पल्लव यवांकुर, रजत, टापू शंख, तालदल, दंतपात्रिका मृणाल वलय आदि निवेश से मंडित होकर विहार गोष्ठियों में जाता था।

आचार्य वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में जिन 64 कलाओं के बारे में बताया है उनमें से 2 तिहाई कलाएं बौद्धिक अथवा साहित्यिक हैं। दित्याशय्या के बाद कपड़े अलंकार से विमंडित नागरिक जिन गोष्ठियों में भाग लेता था। वह गोष्ठिया ज्यादातर बौद्धिक तथा साहित्यिक ही हुआ करती थी। उच्चकोटि के श्रीमंत नागरिक की गोष्ठी के साथ प्रधान अंग होते थे।

विद्वान्, भाट, मसखरे, कवि, गायक, पुराणज्ञ और इतिहासज्ञ- ये सातों अंग बौद्धिक तथा काव्यशास्त्र विनोदों में भाग लिया करते थे। आचार्य वात्स्यायन के अनुसार अच्छी या बुरी 2 प्रकार की गोष्ठी जमती थी। 1-2 मनचले लोगों की गोष्ठी- जिसमें जुआ, हिंसा आदि कुर्कम शामिल थे। दूसरे भले मनुष्यों की गोष्ठी जिसमें खेल और विद्याएं शामिल थी।

पुराने समय में पदगोष्ठी, जलगोष्ठी, गीतगोष्ठी, नृत्यगोष्ठी, काव्यगोष्ठी, वीणागोष्ठी, वाद्यगोष्ठी आदि कई प्रकार की गोष्ठियों में नागरिक भाग लेते थे। इन गोष्ठियों के विषय, कहानियां, कलाएं, काव्य, गीत, नृत्य, चित्र और वाद्य आदि होते थे। विद्यागोष्ठी की अंगभूत गोष्ठियां काव्यगोष्ठी, पदगोष्ठी और जलगोष्ठी थी। विद्यागोष्ठी का खास समादरण था।

काव्यगोष्ठियों में काव्य-प्रबंधों का आयोजन होता था। जलगोष्ठी में आख्यान, आख्यायिका, इतिहास और पुराण आदि सुनाए जाते थे। पदगोष्ठी में अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, गूढ़ चतुर्थपाद आदि प्रकार की बुद्धि बढ़ाने वाली पहेलियां रहती थी।

हर्षचरित के अंतर्गत बाण ने वीरगोष्ठियों के बारे में भी बताया है जिसमें रणभूमि में साका करने वाले वीरों की कहानियां कही और सुनी जाती थी। इस तरह की गोष्ठियों में भारत के पुराने नागरिक के बुद्धिचातुर्य की परीक्षा होती थी। इसके साथ ही मनोरंजन भी होता था। गोष्ठी विनोद के बाद शाम के समय संगीत का आयोजन हुआ करता था।

नागरिक संगीत गोष्ठी को खत्म करके वासगृह में पहुंचकर अभिसारिका की प्रतीक्षा करता है। प्रसाधित वासगृह का मतलब टीकाकारों ने धूप से खुशबूदार किया हुआ कमरा बताया है तोकिन यह गलत है। पुराने समय में

राजा, अमीरों तथा संपन्न नागरिकों के यहां वासागृह बने हुए होते थे। जहां पर विवाह के बाद दूल्हा-दूल्हन का चतुर्थी कम संपादित हुआ करता था।

वासागृह के अंतर्गत दुल्हा-दुल्हन तथा प्रेमी-प्रेमिका के बैठकर प्यार भरी बार्ते, आलिंगन, चुंबन आदि रति-क्रियाएं करने के लिए एक ही पलंग हुआ करता था।

दरवाजों के पल्लों पर कामदेव की दोनों स्त्रियों प्रीति और रति की आकृतियां बनी हुआ करती थी। दोनों ही पल्लों पर मंगल-दीप जला करते थे। एक तरफ प्लॉटों से बोझिल रक्त-अशोक के नीचे धनुष पर बाण रखे हुए निशाना साथे हुए कामदेव का चित्र बना हुआ रहता था। सफेद रंग की चादर से ढके हुए पलंग की बाजू में कांचन आचामरुक रखी होती थी और दूसरी तरफ हाथीदांत का डिब्बा लिए हुए सोने की पुतलिका खड़ी रहती थी। सिरहाने पर पानी से भरा हुआ चांदी का निद्राकलश रखा हुआ रहता था।

वासागृह की भित्तियों पर गोल-गोल शीशे लगे हुए होते थे, जिनमें प्रियतमा के बहुत सारे प्रतिबिंब पड़े रहते थे। 11वीं शताब्दी में ऐसे वासगृहों को आदर्श भवन कहा जाने लगा था तथा बाद में ये शीशमहल या अरसी महल कहलाने लगे थे।

#### १८ोक (14)- घटानिबंधनम्, गोष्ठीसमवायः, समापानकम्, उद्यान गमनम्, समस्या क्रीडाश्च प्रवर्तयेत्॥

अर्थ- इसमें 5 तरह के सामूहिक विनोदों के बारे में बताया गया है। घटानिबंधन गोष्ठी समवाय, समापानक, उद्यानगमन तथा समवयस्क मित्रों के साथ खेल खेलना- इन 5 प्रकार की क्रीड़ाओं में नागरिक को यथावसर प्रवृत्त होना चाहिए।

घटानिबंध- घटानिबंधन देवायतन में जाकर सामूहिक नृत्य-गान करने अथवा गोष्ठी का बोधक हैं। पुराने भारत का नागरिक हर मौसम में बहुत से उत्सवों का आयोजन करता था। शरद, बसंत, हेमंत तथा बारिश के मौसम के अनेक उत्सवों का विवरण पुराने ग्रंथों में बहुत ज्यादा मात्रा में मिलता है।

दूसरे मनोरंजन को गोष्ठीसमवाय बताया गया है। इस तरह की गोष्ठियों को नागरिक अपने घर पर ही आयोजित किया करते थे या किसी गणिका के घर पर। विद्या तथा कला में माहिर कन्याएं गोष्ठी समवाय में जरूर हिस्सा लेती थी तथा पुरुषों की तरह कई प्रकार की काव्य समस्याओं, मानसी, काव्यक्रिया, पुस्तक वाचक, दुर्वाचस योग, देशभाषाविज्ञान, छंद, नाटक आदि बौद्धिक तथा उपयोगी कलाओं में भाग लेती थी और साथ ही गीत, नृत्य और रसालाप द्वारा मौजूद सभ्यों का मनोविनोद भी किया करती थी।

तृतीय मनोरंजन समापानक है। अच्छी तरह से जी भरकर शराब का सेवन करना समापानक है। इस तरह के समापानक मनोरंजन साल में एकाध बार किए जाते थे क्योंकि कौटिल्य अर्थशास्त्र के द्वारा पता चलता है कि उस जमाने में भई शराब बनाने, पीने और बेचने पर बहुत ज्यादा नियंत्रण था। आज की तरह उस समय का भी सरकार का आबकारी विभाग शराब के ठेकों तथा शराब के बनाने आदि की व्यवस्था करता था।

इस तरह के प्रबंध करने वाले व्यक्ति को सुराध्यक्ष कहते थे जो शराब के बनवाने और बेचने का प्रबंध काबिल व्यक्तियों द्वारा किया करता था। सुविधा के अनुसार शराब के ठेके भी वही देता था।

अगर कोई व्यक्ति गैर-कानूनी तरीके से शराब बेचते हुए पकड़ा जाता था तो उसे सजा मिलती थी। शराब के मंगवाने या भेजने पर नियंत्रण रहता था। खुलेआम शराब की बिक्री पर प्रतिबंध लगा हुआ था। जो व्यक्ति शराब

पीकर दंगा-फसाद करता था उसे पकड़ लिया जाता था। शराब को उधार नहीं बेचा जाता था। मद्यशालाओं को बनवाने के लिए सरकारी नक्शे तैयार किये जाते थे और फिर उन्हीं के आधार पर उनका निर्माण कार्य होता था। इसके अलावा सरकारी गुप्तचर विभाग का काम यह था कि वह रोजाना बिकने वाली शराब को नोट कर लें।

समापानक जैसे उत्सवों के मौके पर मद्यनिर्माण और मद्यपान का अलग से सरकारी कानून था। इन मौकों पर सिर्फ श्वेतसुरा, आसव, मेदक और प्रस्सना नाम की शराब ही पी जाती थी।

सुराध्यक्ष की इजाजत से नागकरण इन शराबों को अपने घर पर ही तैयार कर लिया करते थे। मदन महोत्सव आदि खास तरह के मौकों पर सिर्फ 4 दिनों तक खुलकर सामूहिक रूप से सरकार की तरफ से शराब पीने की छूट दी जाती थी। ऐसे मौकों पर सुराध्यक्ष से व्यक्तिगत रूप से सामूहिक रूप से इजाजत लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी।

कामसूत्र में बताया गया है कि उन दिनों राजभवनों में अक्सर आपानकोत्सव या पान गोष्ठी के आयोजन हुआ करते थे। इन मौकों पर बाहर के प्रेमी लोग बिना किसी रोक-टोक के राजभवन में प्रवेश किया करते थे।

चौथा मनोविनोद उद्यानगमन है। आचार्य वात्स्यायन ने स्वयं बताया है कि उस समय उद्यानगमन मनोविनोद किस तरीके से संपादित होता था। उद्यान यात्रा के लिए पहले से एकदिन तय कर लिया जाता था। उस दिन नागरिकगण सुबह से ही पूरी तरह सजधज कर तैयार हो जाया करते थे।

यह यात्रा किसी उद्यान या वन की ही की जाती है जो नागरिकों के निवास-स्थान से इतनी दूरी पर हो कि शाम तक घर पर वापिस पहुंच सकें। इन उद्यान यात्राओं में कभी-कभी अन्तःपुरिकाएं भी साथ में रहती थीं और कभी-कभी गणिकाओं को भी ले जाया जाता था।

उद्यान यात्रा एक तरह का गोठ अथवा पिकनिक होती थी। ऐसे अवसरों पर हिन्दोल लीला, समस्यापूर्ति, आख्यायितका, बिंदुमती आदि अनेक तरह की पहेलियां खेला करती थीं। कुकुट, लाव, मेष, बटेर आदि पशु-पक्षियों की लड़ाईयां कराई जाती थीं। इसी मौके पर कहीं-कहीं क्रीड़ैकशालमली खेल खेला जाता था। सेमल के पेड़ के नीचे ही इस खेल को खेला जाता था। यशोधर के अंतर्गत विदर्भ प्रदेश के नागरिक इस खेल में ज्यादा शौक रखते थे।

पांचवां मनोविनोद समस्या क्रीड़ाओं का है जो सामूहिक रूप से खेली जाती थी। यह काव्य-कला संबंधी क्रीड़ाएं अक्सर उत्सवों में स्थान पाती थीं लेकिन कभी-कभी खासतौर पर इसी विषय के दंगल होते थे। इस विनोद में खासतौर पर निम्नलिखित काव्य-क्रीड़ां होती थीं।

#### मानसीकला-

इस विनोद के अंतर्गत श्लोक के अक्षरों की जगह पर कमल या किसी दूसरे फूल की पंखुड़ियों को बिछा देते थे और उन पंखुड़ियों से ही श्लोक पढ़ा जाता था। इसका दूसरा रूप यह भी था कि अमुक स्थान पर यह मात्रा है, कहीं पर अनुस्वार है, कहीं पर विसर्ग है। बस इतने सी ही उसे पूरा श्लोक बनाना पड़ता था।

#### प्रतिमाला-

इसको अंत्याक्षरी भी कहते हैं। एक पक्ष श्लोक पढ़ता था और दूसरा पक्ष श्लोक के अंत्याक्षर से शुरू करके दूसरा श्लोक पढ़ता था।

#### अक्षरमुण्ठि-

यह समस्या 2 तरह की होती थी-सभासा और निरवभाषा। किसी नाम को संक्षिप्त करके बोलना सभासा कहलाता है जैसे फाल्गुन, चैत्र, वैशाख को छोटा करके फा-चै-वै बोलना। गुप्त तरीके से बातचीत करना निरवभाषा के लिए अनेक प्रकार के इशारे काम में लाए जाते हैं। इसमें एक विधि अक्षरमुष्टि है। इसमें कवर्ग अक्षरों के लिए मुट्ठी बांधी जाती रही है। चर्वर्ग के लिए हथेली फैला दी जाती थी।

इसका विधान यह है कि जो कुछ भी बोलना होता है पहले उसके अक्षरों के वर्गों के संकेत किए जाते हैं। वर्ग बताने के बाद उंगलियों को उठाकर वर्ग अक्षर बताएं जाते हैं जैसे अगर कहना है ग तो पहले वर्ग बताने के लिए मुट्ठी बांधी गई और इसके बाद तीसरी उंगली उठाकर अक्षर बतला दिया गया। वर्ग तथा अक्षर बताने के बाद पैर उठाकर अथवा चुटकी बजाकर मात्राएं बताई जा सकती हैं।

उस समय का हर नागरिक इस प्रकार के काव्य विनोदों को अभ्यास प्रयत्नपूर्वक करता था क्योंकि यश, कीर्ति और लाभ के स्रोत भी ऐसे खेल माने जाते थे। इनके अलावा अक्षरक्रीड़ा, द्रृश्य समादर्श, जलक्रीड़ा उद्दर्शक्रीड़ा, कुसुमावचय आदि क्रीड़ाएं होती थीं।

**श्लोक (15) पक्षसय मासस्य वा प्रजातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यं समाजः॥**

अर्थ- पहली सूचना के मुताबिक 15वें दिन या एक महीने में निश्चित दिन में सरस्वती के मकान में नागरकगण इकट्ठा हो।

**श्लोक (16) कुशीलवाश्चागंतवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेऽन्यः पूजा नियतं लभेरन्। ततो यथाक्षद्धमेषां दर्शनमुत्सगर्गो वा। व्यसनोत्सवेषु चैषां परस्परस्यैककार्यता॥**

अर्थ- स्थायी नियुक्त नट, नर्तक आदि कलाकार समाज उत्सव में भाग लें। बाहर से आए हुए नट, नर्तक भी दर्शकों को अपनी कला-कुशलता का परिचय दें तथा दूसरे दिन वे सही पुरस्कार हासिल करें। इसके बाद अगर नागरिकों में उनके प्रति सम्मान का भाव हो तो उन्हें कला-प्रदर्शन के लिए रोका जा सकता है। आगंतुक कलाकारों तथा स्थानीय कलाकारों में आपसी सहयोग तथा एकता की भावना होनी चाहिए।

दुर्वाचनयोग-

इसमें ऐसे मुश्किल शब्दों के श्लोक हुआ करते थे जिन्हे आसानी से पढ़ा नहीं जा सकता था।

**श्लोक (17)- आगन्तूनां च कृतसमवायानां पूजनमभ्युपतिश्च। इति गणधर्मः॥**

अर्थ- समाज उत्सव देखने के लिए सरस्वती भवन में आयोजित अगर ऐसे लोग आएं जो गोष्ठी के सदस्य न हो तथा बाहर से आए हुए हो तो उनकी अभ्यर्चना तथा मेहमानों का सत्कार यथाविधि करना चाहिए। किसी तरह की मुसीबत आने पर उनकी मदद भी करनी चाहिए। इसी गणधर्म होता है।

आचार्य वात्स्यायन के समयमें 5 तारीख की रात को सरस्वती जी के मंदिर में समाजोत्सव मनाया जाता था। उस समय के उत्सवों में इस पहले दर्जे का उत्सव माना जाता था।

इन उत्सवों के समय बहुत ज्यादा भीड़-भाड़ हुआ करती थी। इन उत्सवों में वहां के नट-नाटियों के अलावा बाहर से भी नट-नाटियां, नर्तक, कुशीलव आदि अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए आया करते थे। हर

कलाकार अपनी कला द्वारा दर्शकों को खुश तथा मंत्रमुग्ध करने की कोशिश करता था। बाहर से आए हुए कलाकारों के रुकने के लिए भोजन आदि के प्रबंध का कार्य एक-एक व्यावसायिक श्रेणी पर छोड़ दिया जाता था। 5 तारीख (पंचमी) के अलावा अन्यान्य देवालयों में इस तरह का समावजोत्सव मनाया जाता था।

समाज आर्य जाति का बहुत ही पुराना और संभवतः आदि उत्सव है। वैदिक काल में समाज का नाम समन था जिसे एक तरह का मेला कहा जाता था। इन समनों के अंतर्गत पुरुषों के अलावा स्त्रियां भी आती थीं जो दिल बहलाने के लिए काफी संख्या में उपस्थित होती थीं। कवि, धनुर्धर और रेस के घोड़े भी इनाम पाने की हसरत रखकर वहां पर पहुंचते थे। इनके अलावा गणिकाएं भी नाम और धन पाने की हसरत रखकर अपनी कला दिखाने के लिए वहां पर पहुंचा करती थीं।

इस मेले की एक खासियत यह थी कि इसमें अपना मनचाहा वर पाने के लिए वयस्क कुमारी कन्याएं काफी संख्या में आग लेती थीं। यह मेला पूरी रात चलता था।

कामसूत्र तथा उससे पहले परिवर्ती साहित्य के अध्ययन से यह पता चलता है कि समाज उत्सव पहले निर्दोष आमोद-प्रमोद का एक सामुदायिक आयोजन था। बाद में इसका एक दूसरा रूप भी बन गया जिसके अंतर्गत शराब पीना, मांस खाना, केलि-क्रीड़ाएं भी होने लगी।

इस प्रसंग में गणभोज की भी व्यवस्था की गई थी जिसमें कई प्रकार के व्यंजन, अनाज और सब्जियां आदि बनी हुई थीं। इनके साथ मांस का भी पूरा प्रबंध होता था। भगवान ने उन मल्लों को महंगे कपड़े तथा मुद्राएं देकर सम्मानित किया था।

कदाचित हिंसामूलक खाने वाले पदार्थों तथा चरित्रहीनता बढ़ने के कारण प्रियदर्शी अशोक ने अपने शिलालेखों में ऐसे शिलालेखों में ऐसे समाजोत्सव की निंदा की है।

#### १८- एतेन तं तं देवताविशेषमुद्दिश्य संभावितस्थितयो घटा व्याख्याताः।

अर्थ- इस प्रकार, शिव, सरस्वती, यज, कामदेव आदिदेवताओं के आलयों में यथासंभव जुटने वाली सामुदायिक गोष्ठियों-मेलों का विवरण पेश किया है।

#### १९- गोष्ठीसमवायमाह वेश्याभवने सभायामन्यतमस्योद्वसिते वा समानविद्याबुद्धिशीलवित्तवयसां सह वेश्याभिरनुरूपैरालापैरासनबंधो गोष्ठी।

अर्थ- इसके अंतर्गत गोष्ठी समवाय की व्याख्या की गई है-

बुद्धि, संपत्ति, विद्या, उम्र और शील में अपने समान मित्रों, सहचरों के साथ वेश्या के घर में, महफिल में अथवा किसी नागरिक के निवास स्थान पर गोष्ठी समवाय का आयोजन करना चाहिए।

#### २०- तत्र चैषां काव्यसमस्या कलासमस्या वा।

अर्थ- वहां सुयोग्य वेश्याओं के साथ बैठकर मधुर तथा मनोरंजक बातचीत करें। काव्य व अन्य बौद्धिक, साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेकर काव्य चर्चा, कला चर्चा तथा साहित्य चर्चा करें। साहित्य, संगीत और कला जैसे विषयों पर आलोचनात्मक, तुलनात्मक चिंतन किया जाना चाहिए।

**श्लोक (21)- तस्यामुज्ज्वला लोककान्ताः पूज्याः। प्रीतिसमानाश्चाहरितः।**

अर्थ- और इस प्रकार की गोष्ठी समवाय में सम्मिलित प्रतिभाशाली कलाकार का अच्छा सम्मान करना चाहिए और बुलाए गए मेहमानों तथा कलाकारों का खासतौर पर सम्मान करना चाहिए।

**श्लोक (22)- परस्परभवनेषु चापानकानि॥**

अर्थ- एक-दूसरे के घर पर जाकर सुरापान, मेरेथ और मधु का पान करना चाहिए।

**श्लोक (23)- तत्र मधुमैपेसुरावान्तिविधलवणफलहरितशाकतिक्तकटुकामलोपदंशान्वेश्याः पाययेयुरनुपिबेयुश्च॥**

अर्थ- इसके अंतर्गत मधु, मेरीय, सुरा और आसव आदि शराबों को अनेक प्रकार के लवण, फल, हरी सब्जियां, चरपरे, कडवे तथा खट्टे मसालों के साथ नागरिकों को वेश्याओं को स्वंयं ही पिलाना चाहिए तथा इसके बाद खुद पीना चाहिए।

**श्लोक (24)- एतेनोद्द्यानगमनं व्याख्यातम्॥**

अर्थ- इस तरह से उद्यान यात्रा में भी समापानक होना चाहिए। अंगूर अथवा दाख के रस से जो शराब बनाई जाती है उसे मधु कहा जाता है। इसके कापिशायन तथा हारहूरक ये 2 नाम और हैं। भारत का रसिक रईस मधु शराब को साफ करवाकर पीता था।

मरोड़ की फली, पलाश, छोह, भारक, मेढ़ासिंगी, करंजा, क्षीरवर्ग के कदि की भावना दिया गया खादार शक्कर का चूरा और उसका आधा लोध, चीता, वायविडंग, परम, मोथा, कलिंग, जौ, दारुहल्दी, कमल, सौंफ, चिचिङ्गा, सतपर्ण आक का फूल को एकसाथ पीसकर चूर्ण बनाकर इकट्ठा करके एक मुट्ठी मसाला एक सारी परिमाण शराब में डालकर शराब को इस प्रकार साफ बनाया जाता था कि पीने वाले खुश हो जाते थे। कभी-कभी स्वाद को बढ़ाने के लिए इसमें 5 पल राब भी मिला दी जाती थी।

मेरेय शराब को तैयार करने के लिए मेढ़ासिंगी की छाल का काढ़ा बनाया जाता था और फिर उसमें गुड़, पीपल और कालीमिर्च को मिलाया जाता था। कभी-कभी पीपल की जगह त्रिफला का प्रयोग कर लिया जाता था।

उस समय में सुरा (शराब) 4 प्रकार की होती थी-

1. सुरा,

2. रसोत्तरा,

3. सहकार,

4. बीचोत्तरा तथा सम्भारकी

साधारण सुरा (शराब) में अगर आम का रस निचोड़ दिया जाता था तो वह सहकार सुरा बनती थी।

अगर साधारण सुरा में गुड़ की चाशनी निचोड़ दी जाती है तो वह रसोतर शराब बनती है।

साधारण सुरा में बीजबंध बूटियां छोड़ देने पर महासुरा बनती हैं।

मुलहठी, दूध, केशर, दारुहल्दी, पाठा, लोध, इलायची, इत्र फुलेल, गजपीपल, पीपल और मिर्च आदि को साधारण सुरा में मिला देने से सम्भारिकी सुरा बनती थी।

आसव को बनाने में 100 पल कैथे का सार, 500 पल राब और एक प्रस्थ शहद का प्रयोग किया जाता था। इसमें पड़ने वाला मसाला, दालचीनी, चीता, गजपीपल, वायविडंग 1-1 कर्ष और और 2-2 कर्ष सुपारी, मुलहठी, लोध और मोथा लेकर आसव में मिलाया जाता था।

इन शराबों को पीने के साथ-साथ कई तरह के लवण, सब्जी के अलावा खट्टे-मीठे, चरपरे पदार्थ खाए जाते थे। आचार्य वात्स्यायन ने ऐसे पदार्थों को उपदंश लिखा है। उपदंश शब्द का अर्थ लिखते हुए हलायुध कोष ने कहा है कि मद्यपान रोचक भोज्य द्रव्यम अथवा शराब पीने के सहाये रोचक भोज्य पदार्थ।

आषानक गोठियों में वेश्याओं की उपस्थिति अपेक्षित मानी जाती थी। वे रसिक नागरक को चषक भरकर शराब पिलाती तथा स्वयं भी पिया करती थी। उद्यान यात्राओं में भी गणिकाएं साथ जाया करती थीं और वहां भी मद्यपान होता था।

**१८ोक (25)- पूर्वाह्ण एव स्वलंकृतास्तुरगाधिरुद्धा वेश्याभिः सह परिचारकानुगता गच्छेयुः। दैवसिकिं च यात्रां तत्रानुभूय कुकुटयुद्धद्यूते: प्रेक्षाभिरनुकूलैश्च चेष्टितैः कालं गमयित्वा अपराहणे गृहीततदुद्यानोपभोगचिह्नास्तथैव प्रत्याद्रजेयुः॥**

अर्थ- इसके अंतर्गत क्रीड़ा उत्सवों और क्रीड़ाओं के बारे में बताया जाता है-

सुबह-सुबह ही गहने-कपड़े पहनकर तथा घोड़े पर सवार होकर गणिकाओं और सेवकों को साथ लेकर उद्यान यात्रा पर जाना चाहिए। यह उद्यान यात्रा इतनी दूर की होनी चाहिए कि शाम तक वापिस पहुंच जाए। उद्यान में जाकर रोजाना के कामों से निपटकर लावक तथा मेढ़ों की बाजी लगाई गई लड़ाईयां देखें, नृत्य नाटक देखें, जुआ खेलें, संगीत का आनंद लें, मनोरंजक खेलों को खेलें। शाम से पहले उद्यान यात्रा के स्मृति-चिन्ह फल, फूल, पत्ते, स्तबक आदि लेकर जिस तरह आए थे उसी तरह घर पर वापिस लौटना चाहिए।

**१९ोक (26)- एतेन रचितोदग्गाहोदकानां ग्रीष्मे जलक्रीडागमनं व्याख्यातम्।**

अर्थ- इस तरह गर्मी की जल क्रीड़ाओं में लीन हो जाना चाहिए। गर्मी के मौसम का उत्तम मनोविनोद जल-क्रीड़ा होता है। जिस समय जमीन और आसमान तेज लू से धधकने लगते थे, उस समय पुराने भारत का श्रीमंत नागरक सर्पनिर्भीक के बराबर महीन वस्त्रों, सुगंधित कपूर का चूर्ण, चंदन का लेप तथा पाटल-फूलों से सुसज्जित धारागृह का प्रयोग दिल खोलकर करता था।

जब विलासनियां गृह वापिकाओं में जल-क्रीड़ा किया करती थी तो कान में घुसाए हुए शिरीष-कुसुम पानी में छा जाते थे। चंदन तथा कस्तूरिका के आमोद से और नाना रंग के अंगरागों से तथा श्रंगार-साधनों से पानी रंगीन हो जाता है।

जल-स्फलन से पैदा हुए जल बिंदुओं से आसमान में मोतियों की लड़ी बिछ जाती थी। तालाब के अंदर से गूंजते हुए मृदंग घोष को, बादल के स्वर जानकर, सोचे-विचारे मयूर उत्सुक हो उठते थे। बालों से खिसके हुए अशोक-पल्लवों से कमल-दल चित्रित हो उठते थे तथा आनंद कल्लोल से दिक्मण्डल मुखरित हो उठता था। प्राचीन चित्रों के द्वारा यह जलकेलि, मनोरम भाव अंकित है।

### ३८०क (२७)- यक्षरात्रिः। कौमुदीजागरः। सुवसंतक॥

अर्थ- इसके अंतर्गत समस्या क्रीड़ाओं का परिचय दिया जाता है-

यक्षरात्रि कौमुदी जागर तथा सुनसंतक उत्सवों में समस्या क्रीड़ाएं रचाई जाती हैं-

आचार्य वात्स्यायन के समय में यज्ञ रात का उत्सव का आयोजन किया जाता था। दीपावली उत्सव का उल्लेख पुराणों, धर्मसूत्रों, कल्पसूत्रों में विस्तृत रूप से मिलता है। लेकिन हैरानी की बात यह है कि कामसूत्र के अंतर्गत दीपावली का कोई उल्लेख न होकर रात के यज्ञ का जिक्र किया गया है। रात्रि यज्ञ से इस बात का पता चलता है कि उस समय, उस दिन यज्ञ की पूजा होती रही होगी तथा द्यूत-क्रीड़ा रचाई जाती है।

अगर व्याकरण का आधार लेकर अर्थ निकाला जाए तो यज्ञ यते पूज्यते इतियज्ञ-छज्ञ-यज्ञः तथा यज्ञ रात्रि निष्पन्न होता है।

मुनकिन है इसी अर्थ को लेकर दीपावली का नाम उस समय यज्ञरात्रि रखा गया हो। पुराने समय में शायद दीपावली उत्सव शास्त्रीय अथवा धार्मिक रूप में नहीं मनाया जाता रहा है क्योंकि वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों के अंतर्गत इसका कोई विवरण नहीं है। स्कन्दपुराण तथा पद्मपुराण में इस पर्व का पूरा विवरण पाया जाता है। उसी के आधार पर दीपावली के उत्सव का प्रचलन अब तक है। कार्तिक की अमावस्या के साथ यज्ञ शब्द जोड़ने का तात्पर्य श्रीसूक्त से साफ हो जाता है। श्रीसूक्त ऋग्वेद के परिशिष्ट भाग का एक सूक्त है। इस सूत्र के एक मंत्र में मणिना सह कहा गया है।

इस वाक्य से पता चल जाता है कि लक्ष्मी का संबंध मणिभद्र यज्ञ से है। मणिभद्र यज्ञ से लक्ष्मी का घनिष्ठ संबंध होने से कामसूत्र के समय तक दीपावली की रात यज्ञरात्रि कहलाती है।

निसंदेह इतना तो कहा जा सकता है कि दीपावली का आधुनिक रूप में जो प्रचलन है वह इसर्वों तीसरी शती के बाद से शुरू होता है और आचार्य वात्स्यायन के समय इसी के पहले सुनिश्चित है। यह अनुमान किया जा सकता है कि वात्स्यायन के समय में कार्तिक की अमावस्या की रात में लक्ष्मी को पूजने और द्यूत-क्रीड़ा की प्रथा रही होगी।

कौमुदी जागरण-

उत्सव अनुमानतः शुरू में विशुद्ध लोकोत्सव रहा होगा क्योंकि संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में आश्विन पूर्णिमा को बिल्कुल भी महत्व नहीं दिया गया है।

आश्विन पूर्णिमा की रात में होने वाला यह उत्सव पालि ग्रंथों में कौमुदीय-चातुमासनीय छन बतलाया गया है। यह उत्सव मौसम बदलाव के लिए मनाया जाता था। कामसूत्रकार ने इसी को कौमुदी जागरण लिखा है।

गहसूत्रों में अश्वयुज की पूर्णिमा को काफी महत्व दिया गया है। गहसूत्रों के द्वारा पता चलता है कि इन उत्सव के मौके पर उस वर्ण के लोग भड़कीले कपड़े पहनकर बड़े उल्लास के साथ अश्वयुजी उत्सव मनाते थे। पशुपति, इंद्र, आश्विन आदि देवताओं को खुश करने के लिए यज्ञ हवन भी किए जाते थे तथा खीर का भोग लगाया जाता था।

आर्यशूर के द्वारा लिखित जातक माला में शिविराज्य की राजधानी में उस दिन नगर भर में चहल-पहल रहती थी। सङ्को, चौमुहनियों में पानी का छिड़काव किया जाता था, उन्हे सजाया-संवारा जाता था। साफ-सुधरे धरातल पर फूल बिखेर दिए जाते थे। चारों तरफ झँडे, पताका तथा वन्दनवार लहराए जाते हैं। जगह-जगह पर नृत्य-नाटक, गीत वाद्य के जमघट लगे होते थे।

मात्स्य सूक्त के द्वारा सुवसंतक के दिन ही बसंत ऋतु का अवतरण होता है। इसी रोज मदन की पहली पूजा होती है। वसन्तावतार को आजकल वसन्तपंचमी कहा जाता है। सरस्वती कण्ठभरण से पता चलता है कि सुवसंतक के दिन विलासिनियां कण्ठ में कुवलय की माला तथा कानों में दुष्प्राप्य नवआम्रमंजरी खोसकर गांव को रोशन कर देती हैं।

ऋतुसंहार से यह पता चलता है कि बंसत का मौसम आते ही विलासिनियां गर्म कपड़ों का भार उतार फेंकती थीं। लाक्षा रंग अथवा कुंकुम से रंजित और सुंगंधित कालगुरु से सुवासित हल्की लाल साड़िया पहनती थीं। कोई कुसुंभी रंग से रंगे हुए दुकूल धारण करती थी तथा कोई-कोई कानों में नए कण्ठिकार के फूल, नील अलकों में लाल अशोक के फूल तथा स्तनों पर उत्फुल्ल नवमलिका की माला पहनती थीं।

गरुण पुराण के इन सुझावों से यह पता चलता है कि यह एक व्रत है जो समूह से संबंधित न होकर व्यक्ति से संबंधित है।

**१८ोक (28)- सहकारभजिका, अभ्यूषखादिका, विसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्षवेडिका, पान्चालानुयानम्, एकशालमली, कदम्बयुद्धानि, तास्ताश्च क्रीडा जनेभ्यो विशिष्टामाचरेयुः। इति संभूयक्रीडाः॥**

अर्थ- इसके अंतर्गत दूसरे क्षेत्रीय क्रीडाओं का वर्णन किया जाता है-

सहकार भन्जिका, अभ्यूषखादिका, विसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्षवेडिका, पान्चालानुयान, एकशालमलि कदम्बयुद्ध- इन स्थानीय तथा सार्वदेशिक क्रीडाओं में नागरक लोग अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार ही खेलें। सामूहिक क्रीडाओं का वर्णन खत्म होता है।

आचार्य वात्स्यायन ने बसंत के मौसम में खेली जाने वाली क्रीडाओं के नाम यहां पर बताए हैं। कामसूत्र की जयमंगला टीका में उनके अलावा उद्यान यात्रा, खलिल क्रीडा, पुष्पावचयिका, नवाम्रखादनिका और आम तथा माधवीलता का विवाह- इन क्रीडाओं को बसंत के मौसम में उसके बाद निदाध में खेलने का समर्थन किया गया है।

इसके अंतर्गत आचार्य वात्स्यायन एकांकी व ऐश्वर्यहीन नागरिकों के मनोरंजन का सुझाव पेश कर रहे हैं-

### **१८०क (29)- एकचारिणश्च विभवसामर्थ्याद्।।**

अर्थ- दुर्भाग्यवश नागरिकों से रहित नागरक अगर अकेले में विचार करता है तो वह अपनी ताकत के अनुकूल ही क्रीड़ा करे।

### **१८०क (30)- गणिकाया नायिकायाश्च सखीभिर्नागरकैश्च सह चरितमेतने व्याख्यातम्।।**

अर्थ- इसी तरह से एकांकिनी हो जाने पर गणिकाएं तथा नायिकाएं भी नागरिकों तथा सहेलियों के साथ मौसम संबंधी क्रीड़ाएं करें।

### **१८०क (31) अविभवस्तु शरीरमात्रो मल्लिकाफेनककषायमात्रपरिच्छदः पूज्याद्देशादागत कलासु विचक्षणस्तदुपदेशेने गोष्ठयां वेशोचिते च वृत्ते साधयेदात्मानमिति पीठमर्दः।।**

अर्थ- इसके अंतर्गत उपनागरकों का परिचय देते हुए उनके आचरण के बारे में बताया गया है-

किसी सांस्कृतिक स्थान से आया हुआ कालाविचक्षण नागरिक अगर गरीब हो, उसके पास मल्लिका, फेनक तथा कषाय मात्र ही बाकी बचे हो तो वह नागरिकों की संभाओं, उत्सवों में जाकर और वेश्याओं के यहां जाकर उनको हितकर उपदेश देकर अपनी जीवीका कमानी चाहिए। उनका आचार्य बनकर पीठमर्द पदवी हासिल करनी चाहिए।

आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक अमीर-गरीब समुदाय, सम्पन्न अथवा एकांकी सभी लोगों को मौसम संबंधी मनोरंजनों और उत्सवों में भाग लेना चाहिए। इससे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का मूल उद्देश्य तथा स्वरूप आसानी से समझा जा सकता है।

कामसूत्र की गवाही से जान पड़ता है कि भारतीय संस्कृति तथा साहित्य में असुंदर तथा विद्रोह का भाव कहीं भी नहीं है। भारतीय नागरिक पुनर्जन्म तथा कर्मफल के सिद्धांतों को स्वीकार कर सांसरिक विधान के साथ सामन्जस्य बनाए रखने के लिए कोशिश करता है। वह दुख में भी असंतुष्ट अथवा फिक्रमंद नहीं हुआ करता क्योंकि उसकी मान्यता है कि मनुष्य अपने कामों का फल भोगने के लिए ही जन्म लेता है।

हमारी सभ्यता मनोविनोदों, उत्सवों, नृत्यो-नाटकों को सिर्फ मनोरंजन का साधन ही नहीं मानती बल्कि अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति का मुख्य साधन समझती है। यही वजह है कि वात्स्यायन ने हर व्यक्ति को चाहे वह जिस स्थिति का, जिस वर्ग अथवा रंग का हो, उत्सवों, मनोविनोदों में भाग लेने का सुझाव दिया है।

### **१८०क (32)- भुक्तविभवस्तु गुणवान् सकलत्रो वेशे गोष्ठयां च बहुमतस्तदुपजीवी च विटः।।**

अर्थ- जो व्यक्ति संपन्न नागरिकों के सभी सुखों का उपभोग कर चुका हो लेकिन किसी वजह हे विभवहीन हो गया हो और सभी नागरक गुणों से संपन्न है, कलावान है, गणिकाओं तथा नागरकों के समाज में लब्धप्रतिष्ठ है, वह वेश्याओं तथा नागरकों के संपर्क से जीविका चलाएं। ऐसा आदमी विट कहलाता है।

### **१८०क (33)- एकदेशविद्यस्तु क्रीड़नको विश्चास्यश्च विदूषकः। वैहासिको वा।**

अर्थ- लेकिन जो लोग किसी कला अथवा विद्या में पूरी हासिल किए हों वह अधूरा कलाकार लोगों के बीच खिलौना बना रहता है। कदाचित वह विश्वस्त हुआ दो विदूषक कहलाएगा अथवा हंसाते रहने की वजह से वैहासिर भी कहा जाता है।

#### १८०क (३४)- एते वेश्यानां नागरकाणां च मन्त्रिणः सन्धिविग्रहनियुक्ताः

अर्थ- ऐसे लोग वेश्याओं तथा नागरिकों के बीच संधि-विग्रहिक बनते हैं।

#### १८०क (३५)- तैर्मिक्षुक्यः कलाविदग्धा मुण्डा वृष्टल्यो वृद्धगणिकाश्च व्याख्याताः॥

अर्थ- विट-विदूषक की तरह कला निपुण भिक्षुकी नायक तथा नायिका के बीच संधि-विग्रहिक बनकर जीवन बिता सकती है।

उपर्युक्त ३ सूत्रों द्वारा आचार्य वात्स्यायन ने पीठमर्द, विट, विदूषक और इन्हीं की तरह भिक्षुणी, बांझस्त्री, विध्वा, बूढ़ी वेश्या आदि के जीवनयापन का विधान बताया है।

सुख-संपन और निर्धन नागरिकों के इस वर्गीकरण से वात्स्यायन कालीन समाज व्यवस्था का सचित्र परिचय प्राप्त होगा। इसके अंतर्गत कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि उच्च वर्ण के लोग ज्यादा समृद्ध होते थे और नीच वर्ण के लोग कम।

ऐसा लगता है कि समृद्ध होने के बाद श्रेष्ठी अथवा सामन्त पदवी हासिल हो जाती थी, शुद्र पद विलीन हो जाता था। ब्राह्मण सिर्फ वेद पाठी ही नहीं होते थे बल्कि देश-देशान्तर का व्यापार करके श्रेष्ठ भी बन जाते थे। क्षत्रियों की भी बात यही है कि वे सिर्फ राजा या योद्धा ही नहीं होते थे बल्कि उच्चकोटि के व्यवसायी तथा सेठ भी होते थे।

मृष्टकटिक नाटक की गवाही के अंतर्गत जाना जाता है कि चारुदत ब्राह्मण होते हुए भी श्रेष्ठ-चत्वर में वास करता है तथा सभी कलाओं का समादरण करने वाला उत्तम नागरिक है। गरीब हो जाने पर भी वसन्तसेना जैसी अनिन्द सुंधरी, गणिका तथा सभी नागरिकों के प्रेम तथा श्रद्धा का भाजन बना रहता है।

आचार्य वात्स्यायन द्वारा बताई गई विट की परिभाषा का मनुष्य मृच्छकटिक का एक दूसरा ब्राह्मण है जो विट कहा जाता है। राजा के साले की चापलूसी करता है, गणिकाओं का सम्मान करता है और उन्हे खुश रखता है।

#### १८०क (३६)- ग्रामवासी च सजातान्विचक्षणान् कौतूहलिकान् प्रोत्साहया नागरकजनस्य वृत्तं वर्णयन्श्रद्धां च जनयन्स्तदेवानुकुर्वीत। गोष्ठीश्च प्रवर्तयेत् संगत्या जनमनुरञ्जयेत्। कर्मस च साहाय्येन चानुगृहणीयात्। उपकारयेच्च।

इति नागरकवृत्तम्॥

अर्थ- इसके अंतर्गत गांव के लोग नागरक के वृत्त का वर्णन करते हैं-

अगर नागरक गांव में जीवनयापन करने या किसी दूसरे मकसद को पूरा करने के लिए निवास करता है तो संजातीय, बुद्धिमान तथा जादू खेल-तमाशा जानने वाले लोगों को रोचक घटनाएं सुनवाकर अपना भक्ति बना लें तथा नागरक जीवन बिताने के लिए उन्हे प्रोत्साहित करें।

उनके मनोरंजन के लिए उत्सवों और यात्राओं का आयोजन किया जाए, अपने संपर्क से उन्हें प्रमुदित बनाकर रखें। उनके काम में सहायता प्रदान करें तथा उन पर अनुग्रह करता रहें। यहां पर नागरकवृत का प्रकरण समाप्त होता है।

नागरकवृत से इस बात का पता चलता जाता है कि उस समय की भारतीय प्रजा, ऐश्वर्य, समृद्धि तथा पौरुष संपन्न थी। सुंदरता तथा सुकुमारता की रक्षा करने में हमेशा जागरुक रहती थी। योग तथा भोग, प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का सामन्जस्य तथा संतुलन बनाए रखने में पूरी तरह काबिल और सावधान थी। उसका अपना भी दृष्टिकोण व जीवन दर्शन था जिसके द्वारा वह इन्द्रियों की वृत्ति को पाश्विकता की तरफ उन्मुख नहीं होने देती थी।

**श्लोक (37)- नात्यंत संस्कृतेनैव नात्यंत देशभाष्या। कथां गोष्ठीषु कथयन्लोके बहुमतो भवेत्॥**

**www.freehindipdfbooks.com**

अर्थ- इसके अंतर्गत गोष्ठियों में भाषा तथा संभाषण संबंधी नियमों की व्याख्या करते हैं-

सभाओं तथा गोष्ठियों में न सिर्फ संस्कृत में ही बोला जाए और न ही सिर्फ भाषा में। ऐसा करने से वक्ता सर्वमान्य तथा सर्वसम्मानित नहीं हो सकता है।

**श्लोक (38)- या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी. परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्वधः॥**

अर्थ- जिस गोष्ठी में जलने वाले लोग रहते हों तथा जहां पर स्वच्छंद कार्यवाही होती हो और दूसरों पर इल्जाम लगाए जाते हो या दूसरों को नुकसान पहुंचाने की कोशिश की जाती हो उस गोष्ठी में बुद्धिमान व्यक्ति को नहीं जाना चाहिए।

**श्लोक (39)- लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैकाकार्यया। गोष्ठया सहचरन्विद्वांलोके सिद्धि नियच्छति॥**

अर्थ- जो लोग इस प्रकार की गोष्ठियों से ताल्लुक रखते हों, जो जनसूचि का प्रतिनिधित्व करते हों और जिस जगह पर सिर्फ विनोदों या मनोरंजनों का ही माहौल रहता हो वह व्यक्ति कामयाबी और ख्याति को प्राप्त कर सकता है।

आचार्य वात्स्यायन के भाषा संबंधी विचार बहुजनहिताय है। वह जन समाज के बीच न तो कठोर पाण्डित्य चाहता है और न ही गंवारपन। उनकी भाषा नीति मध्यम वर्ग का अवलंबन करती है। वात्स्यायन द्वारा हजारों साल पहले निर्धारित की हुई भाषानीति आज के भाषा विवाद के लिए एक उपाय है।

आचार्य वात्स्यायन के समय में संस्कृतनिष्ठ, सुशिक्षित अथवा साहित्य की भाषा रही है तथा प्राकृत जनभाषा रही है। संस्कृत के साथ-साथ जनभाषा में भी साहित्य का प्रणयन उस समय होता रहा है।

आचार्य वात्स्यायन ने नियम बताया है कि सभाओं तथा गोष्ठियों में साधारणतयः शाम का ही उपयोग किया जाए जो कि आसान सुबोध होने के साथ ही साहित्यिक गुणों से भी संपन्न हो। गोष्ठियों में भाग लेने, भाषण देने का आयोजन ख्याति तथा लोकप्रियता हासिल करना है।

बृद्धिमान लोगों को इस प्रकार के उत्सर्वों में जाना चाहिए जो लोकचितानु वर्तिनी हों। जहां अपने दिल के बोझ को उतारकर दिल और दिमाग के लिए बौद्धिक खुराक हासिल की जा सके। आनन्ददायक सौहार्दमय तथा स्नेहमय माहौल हो। ऐसे माहौल में संपन्न हर क्रिया, हर विचार तथा भावना फलवती हो सकती है। इसके साथ ही कामयाबी और ख्याति भी अनुगमन करती है।

१लोक- इति श्री वात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे, प्रथमेऽधिकरणे नागरक वृत्तं चतुर्थोऽध्याय॥

#### अध्याय 5 नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः

१लोक (1)- कामश्चतुर्षु वर्णेषु सर्वर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति॥

अर्थ- इसके अंतर्गत पुरुष तथा स्त्री के दास और दासियों के करने वाले कार्यों को बताया गया है। इसमें सबसे पहले अपनी जाति की स्त्री से रीति-रिवाज के अनुसार विवाह की जरूरत पर रोशनी डाली जाएगी।

क्षत्रिय, ब्राह्मण, शुद्र और वैश्य वर्ग के अनुसार अपनी ही जाति की स्त्री से विवाह करना चाहिए। इससे उनकी जो संतान पैदा होती है वह संसार में उनका नाम रोशन करती है।

आचार्य वात्स्यायन के अनुसार इस बात के दो अर्थ निकलते हैं- पहला- अपनी ही जाति की स्त्री से विवाह करना और दूसरा संतान को पैदा करके लोकधर्म को निभाना।

इसलिए भारतीय जाति व्यवस्था में विवाह पद्धति पर बहुत ही नियंत्रण रखा जाता है। बच्चे के जन्म लेने के बाद के अधिकारों को विकसित और परिपक्व बनाने के लिए पूरी शिक्षा-दीक्षा तथा अच्छे माहौल की जरूरत पड़ती है। लेकिन अगर जन्म से ही उन गुणों को पाने की कोशिश नहीं की जाती तो खानदानी परंपरा का और परिवार के माहौल का असर बच्चे पर ज्यादा नहीं पड़ता।

आचार्य वात्स्यायन की कही बातें यहां पर बिल्कुल ठीक प्रतीत होती है। अगर अपनी पत्नी से संभोग करके संतान पैदा की जाए तो यह संसार की मर्यादा के अंतर्गत आता है।

१लोक (2)- तद्विपरीत उत्तमवर्णासु परपरिगृहीतासु च। प्रतिषिद्धोऽवरवर्णास्वनिरवसितासु। वेश्यासु पुनर्भूषु च न शिष्टो न प्रतिषिद्धः। सुखार्थत्वात्॥

अर्थ- इसमें विवाह के समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इस बात को बताया गया है-

अपनी से ऊंची जाति या पराई स्त्री से संभोग की इच्छा शास्त्रों के अनुकूल नहीं है। इसी तरह से अपने से नीची जाति की स्त्रियों से संभोग की इच्छा रखना गलत है। परंतु वेश्याओं तथा पुनर्भु स्त्रियों से संभोग करना सही है क्योंकि उनके साथ जो संभोग क्रिया की जाती है वह सिर्फ शरीर की आग को शांत करने के लिए होती है न कि संतान आदि पैदा करने के लिए।

आचार्य वात्स्यायन अपनी ही जाति में विवाह करने का ही समर्थन करते हैं क्योंकि वह दोगली जाति पैदा करने को गलत ठहराते हैं। आज के समय में आधुनिक विज्ञान भी इस बात को मानने लगा है कि दो अलग-अलग जातियों के जीवों के आपस में मिलने से एक तीसरे प्रकार के जीव की उत्पत्ति होती है।

### ३लोक (3)- तत्र नायिकास्तिस्त्रः कन्या पुनर्भूर्वेश्या च इति॥

अर्थ- 3 प्रकार की स्त्रियां होती हैं कन्या, पुनर्भु और वेश्या।

आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक इन तीनों प्रकार की स्त्रियों से पुरुष को प्रेम संबंध जोड़ने चाहिए। पहली स्त्री अर्थात् कन्या को सबसे अच्छा माना जाता है। पुनर्भु स्त्री को उससे नीचा और वेश्या स्त्री को सबसे नीचा माना गया है। अब सवाल यह उठता है कि आचार्य वात्स्यायन ने पुनर्भु और वेश्या को कन्या से नीचा क्यों बताया है। जिस लड़की की शादी नहीं होती उसे कन्या कहा जाता है। जो लड़की शादी से पहले किसी पुरुष के साथ संभोग करती है तो उसे पुनर्भु तथा कई पुरुषों के साथ संबंध बनाने वाली स्त्री को वेश्या कहा जाता है।

इससे एक बात पूरी जाहिर हो जाती है कि आचार्य वात्स्यायन के समय में भी कुंवारी युवतियों को भी अपनी पसंद के युवक से विवाह करने की पूरी छूट थी। हर युवक अपनी खूबियों के बल पर युवती को पाने की इच्छा रखता था। आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक विवाह में बंधने से पहले युवक तथा युवती को आपसी प्रेम संबंध द्वारा एक-दूसरे से परिचित हो जाना चाहिए।

जिस युवक में सारे गुण होते हैं ऐसे युवक के लिए कन्या स्त्री उससे नीचे युवक के लिए पुनर्भु तथा सबसे नीचे युवक के लिए वेश्या स्त्री को चुनने का मकसद सही होता है। सबसे पहले आपस में प्रेम बढ़ाना, फिर एक-दूसरे पर भ्रोसा रखना और फिर विवाह करना आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक सही है।

आचार्य वात्स्यायन ने इसमें युवक की पात्रता के अनुकूल वेश्या नायिका का विधान बनाया है। इसका मतलब यह है कि बुरे युवक के लिए बुरी युवती। इतिहास में वेश्याओं की स्थिति और वह कितनी पुरासे समय से चली आ रही है यह बताया गया है। सभी पुराने ग्रंथों में वेश्याओं के बारे में लिखा हुआ मिलता है। इसी के साथ ही वेश्याओं के संबंध में अलग ग्रंथ भी बने हुए हैं।

वेश्याओं को पुराने समय में समाज का एक जरूरी अंग माना जाता था। पहले के समय में वेश्याओं को इस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी कि शारीरिक और मानसिक विकास कैसे होता है। लेकिन दूसरी स्त्रियों को इस प्रकार

की शिक्षा से दूर रखा जाता था। पुराने समय से ही वेश्याएं हर चीज में निपुण होती थीं। यहीं नहीं उंची जाति की स्त्रियां भी इनकी शिक्षा-दीक्षा से लाभ उठाया करती थीं।

आचार्यों ने कामसूत्र के अलावा दूसरे ग्रंथों में भी कई प्रकार की स्त्रियों के लक्षण बताए हैं-

1- चित्रिणी

2- परकीया

3- सामान्या

4- स्वकीया

5- पदमिनी

6- हस्तिनी

7- शंखिनी

8- मुग्धा

9- जातयौवना

10- मध्यमा

11- प्रौढ़ा

12- आरुढ़ यौवना मुग्धा

13- नवलअनंग

14- लज्जाप्रिया मुग्धा

15- लुब्धपति प्रौढ़ा

16- प्रगल्भव चना मध्या

17- आक्रमिता प्रौढ़ा

18- सुरतविचित्रा मध्या

19- विचित्र-विभ्रमा प्रौढ़ा

20- समस्तरत कोवि प्रौढ़ा

21- कलहातरिता

22- धीरा

23- उत्कण्ठिता

24- धीरा-धीरा

- 25- स्वाधीन पतिका  
26- प्रादुर्भूतमनोभवा मध्या  
27- सम्सयाबन्धु  
28- खंडिता  
29- स्वयंदूतिका  
30- प्रोषितापतिका  
31- कुलटा  
32- लक्षिता  
33- लघुमानवती  
34- मुदिता  
35- अयुशयना  
36- मध्य मानवती  
37- अनूढा  
38- गुरु मानवती  
39- रूपग्रंथिता  
40- ग्रंथिता  
41- अन्य संभोग दुःखिनी  
41- कुलटा  
42- कनिष्ठा  
43- अदिव्या  
44- वचनविदग्धा  
45- क्रियाविदिग्धा  
46- दिव्या  
46- दिव्या दिव्या  
47- कामग्रंथिता  
48- मध्यमा

49- उत्तमा

50- प्रेमगर्विता

51- रूपगर्विता

**श्लोक (4)- अन्यकारणवशात्परपरिगृहीतापि पाक्षिकी चतुर्थीति गोणिकापुत्रः॥**

अर्थ- इसके अंतर्गत बहुत से आचार्यों द्वारा बताई गई स्त्रियों का उल्लेख किया जाता है।

बहुत से कारणों से पराई स्त्री को भी चौथी स्त्री बनाया जा सकता है।

**श्लोक (5)- य यदा मन्यते स्वैरिणीयम्॥**

अर्थ- जिन कारणों से पराई स्त्रियों को नायिका बनाया जा सकता है वह निम्नलिखित है-

पुरुष जब इस बात को समझ ले कि पराई स्त्री पतिव्रता नहीं होती है।

**श्लोक (6)- अन्यतोऽपि बहुशो व्यवसित चारित्रा तस्यां वेश्यायामिव गमनमुत्तमवर्णन्यामपि न धर्मपीडां करिष्यति  
पुनर्भुरियम्॥**

अर्थ- आचार्य स्वैरिणी पराई स्त्री से संबंध बनाने के औचित्य को बताते हैं-

बहुत से लोगों द्वारा उनके चरित्र को पहले से ही खराब किया जा चुका है इसीलिए अगर वह अच्छी जाति की भी हो तब भी उसके साथ संभोग क्रिया करना वेश्या के अभिगमन की तरह धर्म के विरुद्ध नहीं होगा।

**श्लोक (7)- अन्यपूर्वावरुद्धा नात्र शगंस्ति॥**

अर्थ- वह स्त्री पहले ही दूसरे पुरुषों के साथ नाजायज संबंध बनाती है इसलिए उससे संबंध बनाने में किसी तरह की शंका नहीं करनी चाहिए।

**श्लोक (8)- पति वा महान्तीमीऽचरमस्मदमित्रसंसृष्टमियमवृहम प्रभुत्वेन चरति। सा मया संसृष्टा स्नेहादेनं  
व्यावर्तीयिष्यति॥**

अर्थ- यदि उस स्त्री का पति नामी-गिरामी हस्तियों में आता है और मेरे दुश्मन से उसका संबंध है तो उस स्त्री से मेरा संबंध हो जाने पर वह मेरे मोह में पड़कर अपने पति का मेरे दुश्मन से संबंध तुड़वा देगी।

**१८ोक (9)- विरसं वा मयि शक्तमपकर्तुकामं च प्रकृतिमापादयिष्यति॥**

अर्थ- इसका अर्थ यह है कि मेरे पुराने दोस्त जो कि किसी कारण से मेरे दुश्मन बन गए हो और मुझे नुकसान पहुंचा रहे हो तो वह स्त्री उससे मेरी दुबारा से दोस्ती करा देगी और यदि दोस्त न भी बना पाई तो उसके द्वारा मुझे किसी प्रकार की हानि भी नहीं होने देगी।

**१९ोक (10)- तथा वा भित्रीकृतेन भित्रकार्यमभित्रप्रतीघातमन्यद्वा दुष्प्रतिपादकं कार्यं साधयिष्यामि॥**

अर्थ- अर्थात् उससे संबंध बन जाने पर उसके द्वारा दोस्ती या दुश्मनी के कार्यों को या किसी भी मुश्किल काम को मैं पूरा कर लूंगा।

**२०ोक (11)- संसृष्टो वानया हत्वास्याः पतिमस्मद्धाव्यं तदैश्चर्यमेवमधिगमिष्यामि॥**

अर्थ- नहीं तो उस स्त्री से मेरे संबंध बन जाने पर उसके पति को मारकर उसके द्वारा छीनी गई मेरी सम्पत्ति को मैं हासिल कर लूंगा।

**२१ोक (12)- निरत्यं वास्या गमनमर्थानुबद्धम्। अहं च निःसारत्वात्क्षीणवृत्त्युपायः। सोऽहमनेनोपायेन तदधनमतिमहदकृच्छादधिगमिष्यामि॥**

अर्थ- धन के लालच में पराई स्त्री के साथ शारीरिक संबंध बनाना कोई बुरी बात नहीं है क्योंकि मैं गरीब हूं, मेरे पास कमाई का कोई साधन नहीं है। इसलिए मैं इस उपाय से उस स्त्री के धन को बहुत ही आसानी से हासिल कर लूंगा।

**२२ोक (13)- मर्मजा वा मयि दृढमभिकामा सा मामनिच्छन्तं दोषविख्यापनेन दूषियिष्यति॥**

अर्थ- या वह मुझ पर पूरी तरह से मोहित है, मेरे राजों को जानती है, अगर मैं उससे सही तरह से बात न करूं तो वह मेरी बुराईयों को सबको बताकर मुझ बदनाम कर सकती है इसलिए मेरे लिए यह ही सही है कि मैं उसके साथ संबंध बना लूं।

**२३ोक (14)- असद्धूतं वा दोषं श्रद्धेयं दुष्परिहारं मयि क्षेप्सयति येन मैं विनाशः स्यात्॥**

अर्थ- या मुझसे खफा होकर वह मुझ पर कोई ऐसा संगीन आरोप लगा दें कि मुझे उससे बचना मुश्किल ही हो जाए तब तो मेरा सर्वनाश ही हो जाएगा। इसलिए उसके साथ संबंध बनाना ही मेरे लिए सही है।

**२४ोक (15)- आयतिमन्तं वा वशं पतिं मत्तो विभिद्य द्विषतः संग्रहयिष्यति॥**

अर्थ- या वह अपने प्रभावशाली पति को मेरे खिलाफ भड़काकर मेरे दुश्मनों के साथ मिला देगी। इसलिए उसके साथ संबंध बनाना ही सही है।

**श्लोक (16)- स्वयं वा तैः सह संसृज्येत। मदवरोधानां वा दूषियाता पतिरस्यास्तदस्याहमपि दारानेव  
दूषयन्तप्रतिकरिष्यामि॥**

अर्थ- या तो वह स्वयं ही मेरे दुश्मनों के साथ मिल जाए या उसका पति मेरी पत्नी को यह सोचकर फँसाना चाहे कि इसने मेरी पत्नी के साथ गलत संबंध बनाए हैं तो मैं भी इसकी पत्नी के साथ ऐसा ही करूंगा। इसलिए इसके साथ संबंध बनाना ही उचित है।

**श्लोक (17)- यामन्यां कामयिष्ये सास्या वशगा। तामनेन संक्रमेणाधिगमिष्यामि॥**

अर्थ- या जिस दूसरी स्त्री को मैं चाहता हूं वह उसके वश मैं हूं और इसकी वजह से मैं उसे हासिल कर लूंगा।

**श्लोक (18)- कन्यामलभ्यां वात्माधीनामर्थरूपवर्तीं मयि संक्रामयिष्यति॥**

अर्थ- या फिर जिस धनवान, खूबसूरत युवती से मैं शादी करना चाहता हूं वह मुझे बिना इसकी सहायता के नहीं मिल सकती।

**श्लोक (19)- इति साहसिक्यं न केवलं रागादेव। इति परपरिग्रहगमनकारणानि॥**

अर्थ- किसी खास कारण के बिना सिर्फ स्त्री के शरीर को पाने के लिए इतने ज्यादा खतरे उठाना बिल्कुल ठीक नहीं है। यहां पर पराई स्त्री के साथ संबंध बनाने का अध्याय समाप्त होता है।

**श्लोक (20)- एतैरेव कारणैर्महामात्रसंबद्धा राजसंबद्धा वा तत्रैकदेशचारिणी काचिदन्या वा कार्यसंपादिनी विधवा**

**पञ्चमीति चारायणः॥**

अर्थ- आचार्य चारायण के अनुसार कन्या, पुनर्भू, वेश्या और पराई स्त्री के अलावा विधवा पांचवीं नायिका है जो राजा, मंत्री और उनके घरवालों के संबंध बना लें या दूसरी कोई ऐसी विधवा स्त्री है जो सफलतापूर्वक अपने सारे कार्यों को कर सके।

**श्लोक (21)- सैव प्रव्रजिता षष्ठीति सुवर्णनाभः॥**

अर्थ- आचार्य सुवर्णनाभ के मुताबिक परिवाजिका विधवा छठे प्रकार की नायिका होती है।

**श्लोक (22)- गणिकाया दुहिता परिचारिका वानन्यपूर्वा सप्तमीति घोयकमुखः**

अर्थ- आचार्य घोटकमुख दासी को सातवें प्रकार की स्त्री बताते हैं।

**श्लोक (23)- उत्क्रान्तबालभवा कुलयुवतिरूपचारान्यत्वादष्टमीति गोनर्दीयः॥**

अर्थ- आचार्य गोनर्दीय के मुताबिक जो युवती बचपन को पार करके जवानी में पहुंचती है और जिसे पाने में बहुत मेहनत करनी पड़ती है वह आठवें प्रकार की नायिका होती है।

**श्लोक (23)- कार्यान्तराभावादेतासामपि पूर्वस्वेवोपलक्षणम् तस्माच्यतस्त्र एव नायिका इति वात्स्यायनः॥**

अर्थ- चारायण से लेकर गोनर्दीय तक जिन आचार्यों ने 4 तरह की नायिकाओं के बारे में बताया है वह सब कन्या, पुनर्भू, वेश्या तथा पराई स्त्री के अन्तर्गत समाहित है उनके अलग नहीं हैं। इसलिए सिर्फ 4 प्रकार की नायिकाएं हैं।

आचार्य वात्स्यायन ने गोणिकापुत्र के दिए हुए मत को स्वीकार करके बाकी दूसरे आचार्यों को बहुत ही चतुराई से गलत साबित कर दिया है।

#### १८ोक (24)- भिन्नत्वात् तीया प्रकृतिः पञ्चमीत्येके॥

अर्थ- आचार्यों के अनुसार पुरुष तथा स्त्री से अलग तीसरे प्रकृति अर्थात् (किन्नर) पांचवीं नायिका है।

इस तीसरी प्रकृति (किन्नर) को पोटा, क्लीव, नपुंसक, वर्षधर, षण्व, उभय-व्यंजन आदि के नामों से भी जाना जाता है। वैसे नपुंसक और हिजड़ों में काफी फर्क होता है।

लिंग में पूरी उत्तेजना न होने और वीर्य के पर्याप्त मात्रा में न होने के कारण जो पुरुष स्त्री के साथ संभोग करने में असमर्थ रहता है उसे नपुंसक कहा जाता है। कुछ पुरुष जन्म से ही नपुंसक होते हैं और कुछ अपनी जवानी की गलतियों के कारण हो जाते हैं। नपुंसक को क्लीव भी कहा जाता है।

#### १९ोक (25)- एक एवं तु सार्वलौकिको नायकः। प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः। विशेषालाभात्। उत्तमाधममध्यमतां तु गुणागुणतो विद्यात्। तांस्तुभ्योरपि गुणागुणान्वैशिकै वक्ष्यामः॥

अर्थ- इसमें नायिकाओं के लक्षण बताने के बाद पुरुष के लक्षण बताए गए हैं-

स्त्री के जीवन में सबसे बढ़कर जो पुरुष होता है वह उसके पति के रूप में ही होता है। इसके अलावा दूसरा पुरुष उसे कहा जाता है जो सिर्फ शारीरिक सुख के लिए उसके साथ संबंध बनाता है। इनमें से गुण तथा दोषों के ज्यादा या कम होने के अनुसार सबसे अच्छे, मध्यम और नीच पुरुष कहलाते हैं।

#### २०ोक (26)- अगम्यास्तवेवैता:- कुष्ठन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्या प्रकाशप्राप्तिनी गतप्राययौर्वनातिश्वेतातिकृष्णा दुर्गन्धा संबन्धिनी सखी प्रवजिता संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदाराश्च॥

अर्थ- इसके अंतर्गत 13 तरह की अगम्या स्त्रियों (जिन स्त्रियों के साथ संभोग नहीं किया जा सकता) के बारे में बताया गया है यह स्त्रियां हैं- पागल, कोङ्डिन, बेशर्म, ज्यादा उम्र की, शरीर से बदबू आने वाली, किसी तरह के रिश्ते में लगती हो, ज्यादा सफेद रंग की या ज्यादा काली रंग की, बचपन की सहेली, जो किसी राज को न छुपा पाती हो, सन्यासिनी।

#### २१ोक (27)- दृष्टपञ्चपुरुषा नागम्या काचिदस्तीति बाभ्रवीयाः॥

अर्थ- बाभ्रवीय आचार्यों के मुताबिक अगर कोई स्त्री 5 पुरुषों के साथ संबंध बनाती है तो वह अगम्या स्त्री नहीं है।

#### २२ोक (28)- संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदारवर्जमिति गोणिकापुत्रः॥

अर्थ- बाभ्रवीय आचार्य के मत में आचार्य गोणिकापुत्र ने अपना एक मत और जोड़कर उसका समर्थन करते हैं- 5 पुरुषों के साथ संबंध बनाने के बाद भी रिश्तेदार, मित्र, ब्राह्मण और राजा की स्त्री अगम्य है।

आचार्य वात्स्यायन ने जिस तरह की 13 स्त्रियों के नाम बताए हैं वह धार्मिक, सामाजिक, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सबसे ज्यादा निषिद्ध हैं। शरीर विज्ञान तथा वंशानुक्रम-विज्ञान से अगर देखा जाए तो पागल, कोङ्डिन, शरीर से बदबू आने वाली, ज्यादा काली युवती या ज्यादा गोरी लड़की से संभोग करना भयंकर तथा वंश

परंपरागत विकारों को जानबूझकर बुलावा देना है। ज्यादा उम्र की स्त्री के साथ संभोग करना दिल और दिमाग तथा शरीर को नुकसान पहुंचाना ही होता है।

इसके साथ बड़ी कोशिश से रक्षा करने लायक, वीर्य का नाश करने के समान ही है। अगर धार्मिक दृष्टि से देखा जाए तो अपने कुल या गौत्र की स्त्री, दोस्त की पत्नी, राजा की पत्नी तथा सन्यासिनी के साथ संभोग करना जानवर पंती समझी जाती है अर्थात् जो पुरुष ऐसा करता है वह मनुष्य न कहलाकर जानवर कहलाने के लायक ही है।

**श्लोक (29)- सहपांसुक्षीडितमुपकारसंबंद्धं समानशीलव्यसनं सहाध्यायिनं यश्चास्य मर्माणि रहस्यानि य विद्यात्, यस्य  
चायं विद्याद्वा धात्रपत्यं सहसंवृद्धं मित्रम्॥**

अर्थ- इसमें यह बताया गया है कि कैसे लोगों को अपना प्रिय मित्र बनाना चाहिए जैसे बचपन में जिनके साथ पूरे दिन खेलते हों, जिस पर किसी तरह का एहसान किया हो, स्वभाव या गुण आदि में जो बिल्कुल अपनी ही तरह हो, जिससे किसी तरह के राज को ना छुपाया गया हो और जो एक ही मां की गोद में खेलकर पले-बढ़े हों।

**श्लोक (30)- पितृपैतामहमविसंवादकमद्दृष्टवैकृतं वशं धुवमलोभशीलमपरिहार्यममन्त्रविस्त्रावीति मित्रन्संपत्॥**

अर्थ- जिससे खानदानी प्यार-दुलार चला रहा हो, जिन लोगों से लड़ाई-झगड़ा न होता हो, जो स्वभाव से चंचल न हो, लालची न हो, किसी के बहकावे में न आए और किसी के द्वारा बताई गई बातों को दूसरों के सामने न खोले। इस प्रकार के लोगों के साथ दोस्ती रखनी चाहिए।

**श्लोक (31)- राजकनपितमालाकारगान्धिकसौरिकभिक्षुकगोपाल कताम्बूलिकसौवर्णिकपीठमर्दविटविदूषकादयो मित्राणि।  
तद्योषिन्मत्राश्च नागरकाः स्युरिति वात्स्यायनः॥**

अर्थ- इनके अलावा कुछ करोबार से संबंध रखने वाले लोग भी नायक के दोस्तों में शामिल हो सकते हैं जैसे धोबी, नाई, माली, भिखारी, दूध वाला, तमोली, सुनार आदि। आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक धोबी, नाई, माली आदि की पत्नियों को भी दोस्त बनाया जा सकता है क्योंकि यह पुरुषों से ज्यादा नायक की ज्यादा मदद कर सकती है। क्योंकि इनका संबंध महल में रहने वाली रानियों से होता है और यह किसी भी समय उनके महल में आ जा सकती है।

**श्लोक (32)- यादुभयोः साधारणमुभ्यत्रोदारं विशेषतो नायिकायाः सुविस्त्रब्धं तत्र दूतकर्म॥**

अर्थ- जो लोग स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ही मन में अच्छी भावना रखते हो खास करके स्त्री का ज्यादा विश्वास पात्र हो वह दूतकार्य के लिए बिल्कुल ठीक रहता है।

**श्लोक (33)- पटुता धृष्टार्थमिगिंताकारजता प्रतारणकालजता विषह्यबुद्धित्वं लध्वी प्रतिपत्तिः सोपाया चेति दूतगाणाः॥**

अर्थ- बातचीत में चतुराई, ढीटपना, इशारों को समझना, नायिका को किस समय बहकाया जा सकता है, इसका काल ज्ञान, संकट अथवा शक महसूस होने पर जल्द ही फैसला लेने वाली आदि दूत के गुणों में शुमार होते हैं।

**श्लोक (34)- भवति चात्र श्लोकः- भवति चात्र श्लोकः- आत्मवान्मित्रवान्युक्तो भावज्ञो देशकालवित्। अलभ्यामप्ययत्नेन  
स्त्रियं संसाधयेन्नरः॥**

अर्थ- इस विषय के बारें में एक पुराना श्लोक है-

जो पुरुष आत्मनिर्भर तथा दोस्त बनाने वाले गुणों से संपन्न होता है, जो वृत्त में निपुण होता है, स्त्रियों के मन के भावों को परखने वाला होता है, स्थान और समय के महत्व को समझता है, वही अलभ्य स्त्री को भी बहुत आसानी से पा लेता है।

इस अध्याय का नाम दूतीकर्म विशेष है लेकिन दूतीकर्म से ज्यादा इसमें दूतकर्म का ही ज्यादा इस्तेमाल किया गया है। नायिका को नायक से मिलाने में दूती जितनी ज्यादा मदद कर सकती है उतनी दूत नहीं कर सकता। आचार्य वात्स्यायन ने वैसे तो दूसरे काम-शास्त्र के आचार्यों की राय को सही बताते हुए दूतकर्म का कार्य करने वाले पुरुषों की पत्नियों को भी दूतीकार्य में सहयोग करने की राय दी है, लेकिन वह सारी बातें समीचीन इसलिए नहीं जान पड़ती कि जितने प्रकार के दूत बताए गए हैं उन सभी की पत्नियां दूतीकार्य के लिए सही नहीं रहती। पुराने इतिहास में स्त्री और पुरुष के बारे में प्रेम के बारे में पढ़ने पर जात होता है कि स्त्री और पुरुष के बीज क्लेश पैदा कराने वाले कार्यों में स्त्रियां ही ज्यादा सफल साबित हुई हैं पुरुष दूत नहीं।

इस अध्याय को जो नाम दिया गया है उसके अनुसार इस विषय का विवेचन न के बराबर हुआ है। विषयांतर का समावेश समीक्षक दिमाग में उलझने पैदा करता है। इस अध्याय में दूतीकार्य को छुआ तक नहीं गया है बल्कि इसके मुकाबले दूसरे ग्रंथों में इस विषय के बारें में पूरी जानकारी मिलती है।

आचार्य वात्स्यायन ने एक पुराने श्लोक को उदाहरण के रूप में बताते हुए कहा है कि जिस पुरुष के पास आत्मबल और बहुत सारे भरोसेमंद मित्र होते हैं और वह नागरकवृति में निपुण तथा मन के भावों को समझने वाला होता है। वह अनायास, अलभ्य स्त्रियों को हासिल कर सकता है।

इस अध्याय के अंतर्गत नायक पुरुष के जो गुण और विशेषताएं बताई गई हैं वह सिर्फ अलभ्य स्त्रियों को हासिल करने में ही कामयाबी नहीं दिलाती बल्कि जीवन के हर क्षेत्र और काम-काज में पूरी तरह से कामयाब बनाती है।

जो पुरुष कायर नहीं होता उसी को आत्मवान कह सकते हैं। जिसका दिल साफ होता है वही सच्चा मित्र बन सकता है। मन के भावों को समझने वाला वही व्यक्ति हो सकता है जिसके अंदर समीक्षात्मक दिमाग तथा मनौवैज्ञानिक नजरिया हो और व्यवहारकुशल व्यक्ति ही देशकालवित हो सकता है।

इस श्लोक से यहीं पता चलता है कि काम-शास्त्र का जाता पुरुष छिठोरा, लफंगा और मनचला नहीं होता बल्कि कुलीन, समझदार, लोकप्रिय, स्वाभिमानी, आत्मनिष्ठ और कलाकुशल होता है।

श्लोक- इति श्री वात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकलणे पंचमोऽध्यायः प्रथम अधिकरण (साधारण) समाप्त।

## अध्याय १ रताववस्थापन प्रकरण (प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनम् )

**१लोक-१. शशो वृषोऽश्वइति लिंगतो नायकविशेषः। नायिका पुनमृगी बडवा हस्तिनी चेति।**

अर्थ- छोटे, बड़े या मध्यम आकार के लिंग के आधार पर पुरुष को शश (खरगोश), बैल और घोड़े की संज्ञा दी गई है। स्त्री की योनि कम गहरी, ज्यादा गहरी या साधारण गहरी होने के आधार पर उसे मृगी (हिरनी), घोड़ी तथा हथिनी की संज्ञा दी जाती है।

**१लोक-२. तत्र सदृशसंप्रयोगे समपतानि त्रीणि॥**

अर्थ- अपने जोड़े के स्त्री और पुरुष के संभोग करने को समरत कहते हैं। यह 3 प्रकार का होता है-

शश (खरगोश) पुरुष का मृगी (हिरनी) स्त्री के साथ।

वृष (बैल) पुरुष का बडवा (घोड़ी) स्त्री के साथ।

अश्व (घोड़ा) पुरुष का हस्तिनी (हथिनी) स्त्री के साथ।

**१लोक-३. विपर्ययेण विषमाणि षट्। विषमेष्वपि पुरुषाधिक्यं चेदनन्तरसंप्रयोगे द्वे उच्चरते। व्यवहितमेकमुच्चरतम्। विपर्यये पुनर्द्वे नीचरते। व्यवहितमेकं नीचकतरतं च। तेषु समानि श्रेष्ठानि। तरशब्दाग्निं द्वे कनिष्ठे। शोषाणि मध्यमानि॥**

अर्थ- संभोग क्रिया करने के लिए एक जोड़े के सदस्य का दूसरे जोड़े के सदस्य के साथ बदलकर संभोग करना जैसे शश (खरगोश) पुरुष का बडवा (घोड़ी) स्त्री या हस्तिनी स्त्री के साथ संभोग करना, वृष (बैल) पुरुष का मृगी (हिरनी) स्त्री के साथ संभोग करना और अश्व (घोड़ा) पुरुष का मृगी (हिरनी) स्त्री या बडवा (घोड़ी) स्त्री के साथ संभोग करना। यह 6 तरह के होते हैं। इस तरह की संभोग क्रियाओं में भी ज्यादा बड़े लिंग वाले पुरुष का छोटी योनि वाली स्त्री के साथ तथा मध्यम आकार के लिंग वाले पुरुष का साधारण योनि वाली स्त्री के साथ संभोग करना उच्चरत कहलाता है। बड़े लिंग वाले पुरुष का छोटी योनि वाली स्त्री के साथ संभोग करना उच्चरत होता है। इसके विपरीत ज्यादा गहरी योनि वाली हस्तिनी स्त्री के साथ मध्यम आकार के लिंग वाले वृष पुरुष के साथ, छोटे लिंग वाले शश पुरुष का ज्यादा साधारण योनि वाली स्त्री के साथ नीचरत तथा ज्यादा गहरी योनि वाली हस्तिनी स्त्री से छोटे लिंग वाले शश पुरुष का संभोग करना नीचरत माना जाता है। इन सब तरह की संभोग क्रियाओं में अपने बराबर के जोड़े के पुरुष के साथ संभोग करना नीचरत माना जाता है। उच्चतर और नीचतररत को सबसे नीची संभोग क्रिया माना जाता है।

**१लोक-४. साम्येऽष्युच्चाड नीचाङ्गञ्जयायः। इति प्रमाणतो नवरतानि॥**

अर्थ- मध्यम संभोग में भी अश्व पुरुष का बडवा स्त्री के साथ, वृष पुरुष का मृगी स्त्री के साथ संभोग करना कुछ हद तक ठीक है। लेकिन हस्तिनी स्त्री से वृष पुरुष का या बडवा स्त्री का शश पुरुष से संभोग करना किसी भी मायने में सही नहीं कहा जा सकता।

अगर सिर्फ संभोग करने में मिलने वाले सुख को ही सामने रखकर विचार करते हैं तो सीत्कार, विलास और उपर्सग यह तीन क्रियाएं संभोग में प्रमुख मानी जाती हैं। लेकिन संभोग क्रिया का असली आनंद स्त्री और पुरुष के स्वभाव,

शरीर की बनावट और जननेन्द्रियों की बनावट पर ज्यादा निर्भर करता है। आचार्य वात्स्यायन ने जननेन्द्रियों के नाम के अनुसार 3 तरह के पुरुष बताए हैं-

शश (खरगोश)- ऐसे पुरुषों का लिंग लगभग 6 इंच का होता है।

वृष (बैल)- इस तरह के पुरुषों का लिंग 8 इंच का होता है।

अश्व (घोड़ा)- इनका लिंग लगभग 12 इंच का होता है।

ऐसी ही स्त्रियों में भी होता है-

मृगी (हिरनी) स्त्री।

बड़वा (घोड़ी) स्त्री।

हस्तिनी (हथिनी) स्त्री।

[www.freehindipdfbooks.com](http://www.freehindipdfbooks.com)

पुरुष के लिंग का मापन लंबाई तथा मोटाई के आधार पर किया जाता है और स्त्री की योनि का मापन उसकी गहराई तथा चौड़ाई से होता है। जिन स्त्री और पुरुषों के लिंग और योनि का माप एक ही आकार में होता है उनके आपस में संभोग करने की क्रिया को सम कहा जाता है। सम संभोग मुख्यतः 3 तरह का होता है और विषम संभोग अर्थात् अदल-बदलकर संभोग करना मुख्यतः 6 तरह का होता है। सम अर्थात् शश पुरुष का मृगी स्त्री के साथ, वृष पुरुष का बड़वा स्त्री के साथ और अश्व पुरुष का हस्तिनी स्त्री के साथ संभोग करना। इस तरह से यह 3 तरह की संभोग क्रिया होती है। शश पुरुष का बड़वा तथा हस्तिनी स्त्री के साथ, वृष पुरुष का मृगी या हस्तिनी स्त्री के साथ और अश्व पुरुष का बड़वा स्त्री के साथ संभोग करना। इस तरह से यह 6 तरह की संभोग क्रिया होती है।

१लोक-५. यस्य संप्रयोगकाले प्रीतिरुदासीना वीर्यमल्पं क्षतानि च न सहते न मन्दवेगः॥

अर्थ- इसके अंतर्गत कामजन्य मानसिक आवेश के अनुसार पुरुष और स्त्री के संभोग करने के भेद बताए जा रहे हैं- संभोग क्रिया के समय जिस व्यक्ति की काम-उत्तेजना बहुत कम होती है, वीर्य कम निकलता है और जो स्त्री के द्वारा अपने शरीर पर नखक्षत (नाखूनों को गढ़ाना) और दन्तक्षत (दांतों को गढ़ाना) आदि प्रहारों को सहने में असमर्थ हो तो वह मन्दवेग कहलाता है।

१लोक-६. तद् विपर्ययौ मध्यमचण्डवेगौ भवतः। तथा नायिकापि॥

अर्थ- इसके विपरीत मध्यम और तेज संभोग करने की इच्छा रखने वाले पुरुषों को चण्डवेग कहा जाता है। इसी तरह संभोग की इच्छा के मुताबिक स्त्रियां भी 3 प्रकार की होती हैं- मंटवेग, मध्यम वेग और चंडवेग।

#### १लोक-7. तत्रापि प्रमाणवदेव नवरातानि॥

अर्थ- लिंग प्रमाण के प्रकार के अनुरूप बताए जा रहे 9 प्रकार के रत्नों की तरह यहां भी 9 प्रकार के स्त्री और पुरुष की संभोग क्रिया होती है।

#### १लोक-8. तद्वत्कालतोऽपि शीघ्रमध्यचिरकाला नायकाः॥

अर्थ- लिंग की लंबाई, मोटाई और संभोग करने की इच्छा की तरह समय से भी स्त्री और पुरुष के शीघ्र, मध्य और चिरकाल 3 भेद होते हैं।

#### १लोक-9. तत्र स्त्रियां विवादः॥

अर्थ- स्त्री के बारे में यहां पर आचार्यों में मतभेद हैं।

#### १लोक-10. न स्त्री-पुरुषवदेव भावमधिगच्छति॥

अर्थ- पुरुष की तरह ही स्त्री को संभोग क्रिया में सुख नहीं मिलता है।

#### १लोक-11. सातत्यात्वस्याः पुरुषेण कण्ठूतिरपनवद्यते॥

अर्थ- फिर स्त्री किस कारण से संभोग क्रिया में लीन होती है।

पुरुष के साथ संघर्षण (संभोग करने से) होने से स्त्री की खुजली दूर हो जाती है।

#### १लोक-12. सा पुनराभिमानिकेन सुखेन संसृष्टा रसान्तरं जनयति तस्मिन् सुखबुद्धिरस्याः॥

अर्थ- यदि स्त्री को केवल अपनी खुजली ही दूर करनी है तो उसके लिए उसके पास दूसरे उपाय भी हैं। स्त्री को तो चुम्बन, आलिंगन और प्रहार आदि उत्तेजना पैदा करने वाली क्रियाओं की वजह से पुरुष के साथ संभोग क्रिया करने में चरम सुख की प्राप्ति होती है।

#### १लोक-13. पुरुषप्रीतेश्चानभिज्ञत्वात्कथं ते सुखमिति प्रष्टमशक्यत्वात्॥

अर्थ- स्त्री और पुरुष को संभोग क्रिया में जो आनंद प्राप्त होता है उसका लाभ उनके अपने सिवा आपस में दोनों में से किसी को नहीं हो सकता और न ही इस बारे में उनसे पूछकर ही पता लगाया जा सकता है क्योंकि मानसिक आनंद को शब्दों के द्वारा नहीं बताया जा सकता।

#### १लोक-14. कथमेतदुपलम्यत इति चेत्पुरुषो हि रतिमधिगम्या स्वेच्छया विरमति न स्त्रियमपेक्षते, न त्वेवं स्त्रीत्यौदालकिः॥

अर्थ- इस वजह से इस बात को कैसे मान लिया जाए कि स्त्री को पुरुष की तरह संभोग का चरम सुख प्राप्त नहीं होता।

इस बारे में आचार्य औद्दालिक अपना मत देते हुए कहते हैं कि एक बार संभोग क्रिया में स्खलित होने के बाद पुरुष की उत्तेजना समाप्त हो जाती है और उसे स्त्री की जरूरत नहीं रहती लेकिन स्त्री की प्रवृत्ति ऐसी नहीं है।

**श्लोक-15. तत्रैतस्यात् । चिरवेगे, नायके स्त्रियोऽनुरुज्यन्ते, शीघ्रवेगस्य भावमनासाद्यावसानेऽन्यसूयिन्यो भवन्ति । तत्सर्व भावप्राप्तेरप्राप्तेश्च लक्षणम्॥**

अर्थ- यहां एक बात और भी जानने वाली यह है कि जो पुरुष संभोग क्रिया को बहुत तेजी और देर तक करता है स्त्रियां उससे बहुत लगाव रखती हैं। लेकिन जो पुरुष संभोग क्रिया के समय कुछ ही देर में स्खलित हो जाता है स्त्रियां उनकी निन्दा करती हैं। इसलिए स्त्री अगर पुरुष को कुछ ज्यादा ही प्यार कर रही है तो उसे समझ जाना चाहिए कि स्त्री को संभोग क्रिया का पूरा सुख मिल रहा है।

**श्लोक-16. तञ्च न। कण्डूतिप्रतीकारोऽपि हि दीर्घकालं प्रिय इति । एतदुपपद्यत एव। तस्मात्संदिग्धत्वादलक्षण्यमति॥**

अर्थ- लेकिन यह सही नहीं माना जा सकता क्योंकि स्त्री के द्वारा पुरुष को ज्यादा प्यार आदि करने से यह साबित नहीं हो सकता कि उसकी काम-उत्तेजना शांत हो गई है। वैसे भी अगर पुरुष स्त्री के साथ बहुत देर तक संभोग करता है तो इससे काफी देर तक स्त्री की संभोग की खुजली तो शांत रहेगी तो वह पुरुष से प्यार आदि करने में मशरूफ रहेगी ही।

**श्लोक-17. संयोगे योषितः पुसां कण्डूतिरपनुद्यते । तञ्जाभिमानसंसृष्ट सुखमित्यभिधीयते॥**

अर्थ- इसलिए इस बात को सिद्ध करने के लिए आचार्य ने एक श्लोक का उदाहरण दिया है। पुरुषों के साथ संभोग करने से स्त्रियों की खुजली दूर हो जाती है और आलिंगन, चुम्बन आदि संभोग की सहायक क्रियाएं मिलकर संभोग सुख कहलाती हैं।

**श्लोक-18. सातत्याद्युवतिराम्भातप्रभृति भावमधिगच्छति । पुरुषः पुनरन्त एव। एतुदुपपन्नतरम् । नह्यसत्यां भावप्राप्तौ गर्भसम्भव इति वाभवीयाः॥**

अर्थ- बभु आचार्य के शिष्यों के अनुसार पुरुष जिस समय स्खलित लगता है उसे उसी समय आनंद आता है और स्खलित होने पर समाप्त हो जाता है। लेकिन स्त्री को संभोग की शुरुआत से ही बराबर आनंद की अनुभुति होती रहती है। यह बात बहुत अच्छी तरह से साबित हो चुकी है कि संभोग करने की इच्छा न हो तो कभी भी स्त्री को गर्भ स्थिर नहीं हो सकता है।

**श्लोक-19. अत्रापि तावेवाशङपरिहारौ भूयः॥**

अर्थ- बाभव्य आचार्यों के दिए गए मत में भी उसी तरह की शंकाएं पैदा होती हैं जो आचार्य औद्दालिक के मत में कही जा चुकी हैं। उन समस्याओं का हल भी पहले की ही तरह करना चाहिए।

**श्लोक-20. तत्रैतस्यात् सातत्येन रसप्राप्तावारम्भकाले मध्यरथचित्तता नातिसहिष्णुता च । ततः क्रमेणाधिको रागयोगः शरीरे निरपक्षेत्वम् अन्ते च विरामाभीप्सेत्येतदुपपन्नमिति॥**

अर्थ- यहां पर इस बात पर सवाल उठ सकता है कि अगर स्त्री को लगातार आनंद की अनुभूति हुआ करती है तो किस वजह से संभोग की शुरुआत में पुरुष बहुत ज्यादा उत्तेजित होकर बेचैन हो जाता है और स्त्री शांत सी लेटी रहती है। वह पुरुष के द्वारा अपने शरीर पर नाखूनों को गढ़ाना, दांतों से काटना और स्तनों को दबाना आदि के लिए मना करती है और सिर्फ यही चाहती है कि पुरुष उसके साथ संभोग करता रहे। इस बात से एक चीज पता चलती है कि यह कहना गलत है कि स्त्री को आदि से अन्त तक आनंद की अनुभूति होती है।

**श्लोक-21. कस्या वा भ्रान्तावेव वर्तमानस्य प्रारम्भे मन्दवेगता तत्पश्च क्रमेण पूरणं वेगस्येत्युपपद्यते। धातुक्षयाच्च विरामाभीप्सेति। तस्मादनाक्षेपः॥**

अर्थ- स्त्री की संभोग करने की इच्छा शुरू में कम और फिर धीरे-धीरे तेज होती जाती है और पुरुष के स्खलित होने के बाद शांत हो जाती है। इस प्रकार कहा जाता है कि संभोग क्रिया के शुरू से लेकर वीर्य-स्खलन तक स्त्री की संभोग करने की इच्छा लगातार बनी रहती है।

**श्लोक-22. सुरतान्ते सुखं पुंसां स्त्रीणां तु सततं सुखम्। धातुक्षयनिमिता च विरामेच्छोपजायते॥**

अर्थ- संभोग क्रिया के अंत में पुरुष के स्खलित होने पर ही पुरुष को चरम सुख मिलता है लेकिन स्त्रियों को इस क्रिया की शुरुआत से ही सुख महसूस होने लगता है और स्खलन होने के बाद रुक जाने की इच्छा होती है।

**श्लोक-23. तस्मात्पुरुषवदेव योषितोऽपि रसव्यक्तिद्रष्टव्या॥**

अर्थ- आखिर में वात्स्यायन जी का कहना है कि-

इससे यही बात पता चलता है कि पुरुषों की ही तरह स्त्रियों को भी संभोग क्रिया के अंत में चरम सुख की प्राप्ति होती है।

**श्लोक-24. कथ हि समानायामेवाकृतावेकार्थमभिप्रन्नयोः कार्यवैलक्षण्यं स्यात्॥**

अर्थ- एक ही जाति और एक ही मक्सद में लगे हुए स्त्री और पुरुष का सुख एक-दूसरे से अलग कैसे हो सकता है।

**श्लोक-25. उपायवैलक्षण्यादभिमानवैलक्षण्याच्च॥**

अर्थ- या स्थिति तथा अनुभूति में अंतर पड़ने पर आनंद में अंतर आ सकता है।

**श्लोक-26.. कथमुपायवैलक्षण्यं तु सर्गत्। कर्ता हि पुरुषोऽधिकरणं युवतिः। अन्यथा हि कर्ता क्रियां प्रतिपद्यतेऽन्यथा चाधारः। तस्माच्चोपायवैलक्षण्यात्सर्गादभिमानवैलक्षण्यमपि भवित। अभियुक्ताहमिति पुरुषोऽनुरज्यते। अभियुक्ताहमनेनेति युवातिरिति वात्स्यायनः॥**

अर्थ- आचार्य वात्स्यायन के मुताबिक संभोग क्रिया के दौरान मिलने वाला भेद किस प्रकार हो सकता है। अवस्था भेद तो जन्म से ही होता है। यह बात तो सभी जानते हैं कि पुरुष करने वाला होता है और स्त्री कराने वाली होती है। पुरुष की क्रिया और स्त्री की क्रिया अलग-अलग होती है जैसे- संभोग क्रिया के समय पुरुष चरम सुख के दौरान यह

सोचता है कि मैं संभोग कर रहा हूँ और स्त्री यह सोचती है कि मैं पुरुष से संभोग करा रही हूँ। इस प्रकार अवस्था तथा अनुभूति के अलग होने से सिर्फ इतना अंतर होता है लेकिन संभोग में कोई अंतर नहीं होता है।

**१८ोक-२७.** तत्रैतस्यादुपायवैलक्षण्यवदेव हि कार्यवैलक्षण्यमपि कस्मान्न स्यादिति। तच्च न। हेतुमदुपायवैलक्षण्यम्। तत्र कर्त्ताधारयोर्भिन्नलक्षणत्वादहेतुमत्कार्यवैलक्षण्यमन्यायं स्यात्। आकृतेरभेदादिति॥

अर्थ- अब दुबारा यह आक्षेप पेश किया जा रहा है कि जब स्त्री और पुरुष की स्थितियों में भेद है तो फिर उनको मिलने वाले संभोग के समय में अंतर क्यों नहीं होगा। आक्षेप का जवाब यह है कि ऐसा नहीं हो सकता। अगर स्त्री और पुरुष के अंगों में भेद होगा तो उनकी स्थिति में तो भेद होगा ही। लेकिन बिना कारण ही स्त्री और पुरुष के संभोग किया के फल और चरमसुख में अंतर संभव नहीं हो सकता है क्योंकि स्त्री और पुरुष एक ही जाति के नहीं हैं।

**१८ोक-२८.** तत्रैतस्यात्। संहन्य कारकैरेकोऽर्थोऽभिनिर्वर्त्यते। पृथक्पृथक्स्वार्थसाधकौ पुनरिमाँ तदयुक्तमिति।

अर्थ- अब सवाल यह पैदा होता है कि जब अलग-अलग यानी कि करने वाला और कराने वाला मिलकर कोई काम करते हैं तो एक ही काम पूरा होता है और जब स्त्री और पुरुष मिलकर एक ही क्रिया अर्थात् संभोग क्रिया करते हैं तब यह कहना कि उन्हें इसमें अलग-अलग प्रकार का चरम सुख प्राप्त होता है, सही नहीं है।

**१८ोक-२९.** तच्च न। युगपदनेकार्थसिद्धिरपि ददश्यते। यथा मेषयोरभिघाते कपित्थयोर्भदे मल्लयोर्युद्ध इति। न तत्र कारकभेद इति चेदिहापि न वस्तुभेद इति। उपायवैलक्षण्यं तु सर्गादिति तदभिहितं पुरस्यात्। तेनोभयोरपि सदृशी सुखप्रतिपत्तिरिति॥

अर्थ- ऐसा बिल्कुल सही नहीं है क्योंकि वैसे तो एक साथ कई सारे कामों को सिद्ध होते देखा गया है जैसे 2 मेढ़ों की लड़ाई में, 2 पके हुए फलों को एकसाथ तोड़ने में और पहलवानों की कुश्ती में एक ही फल मिलता है। यदि कहा जाए कि मेढ़ों, फलों और पहलवानों में स्त्री और पुरुषों की तरह लिंग का अंतर नहीं है तो स्त्री और पुरुष में भी वस्तु अंतर नहीं है क्योंकि दोनों ही मनुष्य हैं और यह पहले ही बताया जा चुका है कि लिंग में अंतर तो स्वाभाविक ही होता है। इसलिए यह बात साबित होती है कि संभोग क्रिया के समय स्त्री और पुरुष दोनों को ही एक ही प्रकार का चरम सुख मिलता है।

**१८ोक-३०.** जातेरभेदाद्देम्पत्योः सदृशं सुखमिष्यते। तस्मात्थोपचर्या स्त्री यथाग्रे प्राप्नुयाद्रतिम्॥

अर्थ- इसके अंतर्गत महर्षि वात्स्यायन मुनि ने संभोग में मिलने वाले चरम सुख को प्राप्त करने की पद्धति बताई गई है।

एक ही जाति के होने के कारण स्त्री और पुरुष को संभोग में बराबर सुख मिलता है इसलिए संभोग के समय में चुंबन, आलिंगन और स्तनों को दबाना आदि बाहरीय संभोग द्वारा स्त्री को इस तरह से द्रवित करना चाहिए कि पुरुष से पहले स्त्री को चरम सुख प्राप्त हो जाए। फिर अपनी संभोग करने की इच्छा को पूरी करने के लिए तेज गति से संभोग करना चाहिए।

**१८ोक-३१.** सद्दशत्वस्य सिद्धत्वात् कालयोगीन्यापि भावतोऽपि कालतः प्रमाणवदेव नव रतानि॥

अर्थ- निष्कर्ष में संभोग के 9 प्रकार बताए गए हैं-

पुरुष और स्त्री में बराबरी साबित होने पर समय, भाव तथा प्रमाण के अनुसार स्त्री और पुरुषों के 9 तरह के संभोग होते हैं।

**१८ोक-३२. रसो रतिः प्रीतिभावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायः। संप्रयोगो रतं रहः शयनं मोहनं सुरतपर्याया॥**

अर्थ- इसके अंतर्गत संभोग शब्दों के पर्यायवाची शब्दों की परिगणना करते हैं- रस-रति, प्रीति, भाव, राग, वेग और समाप्ति। यह शब्द संभोग में प्रयुक्त होते हैं और सम्प्रयोग, रत, रहः (अकेले में सोना), शयन मोहन यह शब्द सुरत संभोग में इस्तेमाल होते हैं।

**१८ोक-३३. प्रमाणकालभावजानां संप्रयोगाणामेकैकस्य नवविद्यत्वातेषां यतिकरे सुरतसंख्या न शक्यते कर्तुम्।**

**अतिबहुत्वात्॥**

अर्थ- रत (संभोग) के मुख्य प्रकार-

लिंग और योनि के प्रमाण, संभोग के समय तथा मानसिक भाव इनसे पैदा होने वाले हर प्रकार के रत हैं और यही मिलकर कई प्रकार के बनते हैं। ये बहुत ज्यादा की संख्यां में होते हैं इसलिए इनकी गिनती नहीं की जा सकती है।

**१८ोक-३४. तेषु तर्कादुपयारानप्रयोजयेदिति वात्स्यायनः॥**

अर्थ- वात्स्यायन के मुताबिक इन कई प्रकारों के रतों में पूरी तरह से दिमाग का प्रयोग करके संभोग क्रिया में लगना चाहिए।

**१८ोक-३५. प्रथमरते चण्डवेगता शीघ्रकालता च पुरुषयत, तद्विपरीतमुत्तरेषु। योषितः पुनरेतदेव विपरीतम्। आ धातुक्षयात्॥**

अर्थ- प्रथम रत (पहली बार संभोग करना) के समय जब तक वीर्य स्खलित नहीं होता तब तक पुरुष की गति बहुत ज्यादा होती है जिसके कारण उसकी संभोग करने की इच्छा जल्दी ही समाप्त हो जाती है लेकिन उसी रात में जब पुरुष दुबारा संभोग करता है तो वह इस क्रिया को काफी देर तक कर लेता है। स्त्रियों की प्रवृत्ति इसके विपरीत होती है। उनकी काम-उत्तेजना पहले कम होती है और फिर धीरे-धीरे तेज होकर ठहरती है लेकिन दूसरी बार में वह ज्यादा देर तक नहीं ठहर पाती है। स्त्री और पुरुष की काम-उत्तेजना में यही स्वाभाविक अंतर होता है।

**१८ोक-३६. प्राक् च स्त्रीधातुक्षयात्पुरुषाधातुक्षय इति प्रायोवादः॥**

अर्थ- इसलिए महर्षि वात्स्यायन कहते हैं-

ऐसा पाया गया है कि संभोग क्रिया के समय में स्त्री से पहले पुरुष स्खलित हो जाता है।

**१८ोक-३७. मृदुत्वादुपमृद्यत्वान्निसर्गाच्चैव योषितः। प्राप्तुवन्त्याशु ताः प्रीतिमित्याचार्या व्यवस्थिताः॥**

अर्थ- कामशास्त्र में सभी आचार्यों का मानना है कि संभोग क्रिया के दौरान स्त्रियां पुरुषों से पहले चरम सुख को प्राप्त करती हैं क्योंकि वह स्वभाव से ही नाजुक होती हैं। चुंबन और आलिंगन करने से उनकी कामो-उत्तेजना जल्दी तेज हो जाती है।

**१८ोक-३८. एतावदेव युक्तानां व्याख्यातं सांप्रयोगिकम्। मन्दानामवबोधार्थं विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते॥**

अर्थ- यहां पर स्त्री और पुरुष के बारे में जो बताया जा रहा है सिर्फ बुद्धिमान लोगों के लिए है। साधारण मनुष्यों के लिए इसका वर्णन विस्तार से किया गया है।

**१लोक-39. अभ्यासाभिमानाच्च तथा संप्रत्ययादपि। विषयेभ्यश्च तन्त्रज्ञः प्रीतिमाहश्चुत्तर्विधाम्॥**

अर्थ- कामसूत्र के आचार्यों के अनुसार प्रेम 4 प्रकार से उत्पन्न होता है-

अभ्यास से।

विचारों से।

याद रखने से।

विषयों से।

**१लोक-40. शब्दादिभ्यो बहिर्भूता या कर्माभ्यासलक्षणा। प्रीतिः साभ्यासिकी ज्ञेया मृग्यादिषु कर्मसु॥**

अर्थ- जो प्रेम अभ्यास करने से बढ़ता है उसे अभ्यासिकी कहते हैं जैसे शिकार, संगीत, नृत्य, नाटक आदि। यह प्रेम विषयों से होने वाले प्रेम से भिन्न होती है।

**१लोक-41. अनभ्यस्तेष्वपि पुरा कर्मस्वविषयात्मिका। संकलपाज्ञायते प्रीतिर्या सा स्यादाभिमानिकी॥**

अर्थ- किसी अभ्यास को करे बिना सिर्फ सोचने से ही जो प्रेम पैदा होता है उसे अभिमानी कहा जाता है। यह प्रेम भी विषयों से होने वाले प्रेम से भिन्न होता है।

**१लोक-42. प्रकृतेर्या तृतीयस्याः स्त्रियाशैवोपरिष्टके। तेषु तेषु च विजेया चुम्बनादिषु कर्मसु॥**

अर्थ- वेश्याओं तथा किन्नरों (हिंडे) को मुखमैथुन करने में जिस तरह का सुख मिलता है वह मानसिक कहलाता है। इसी तरह चुम्बन-आलिंगन आदि से होने वाली प्रीति भी होती है।

**१लोक-43. नान्योऽभिति यत्र स्यादन्यस्मिन्प्रीतिकारणो। तन्त्रज्ञः कथ्यते सापि प्रीतिः संवत्थयात्मिका॥**

अर्थ- अचानक ऐसे इंसान को देखकर जिसकी सूरत उस इंसान से मिलती हो जिसको आप बहुत पसंद करते थे तो आपको उसी की याद आ जाती है। इसको सम्प्रययात्मक प्रीति कहा जाता है।

**१लोक-44. प्रत्यक्षा लोकतः सिद्धा या प्रीतिर्विषयात्मिका। प्रधानफलवन्वात्सा तदर्भाश्चेतरा अपि॥**

अर्थ- इन्द्रियों के विषयों से होने वाली प्रीति के बारे में उन सभी लोगों को मालूम होता है लेकिन इन्द्रिय विषयजन्य प्रीति प्रधान होने के कारण बाकी सारी प्रीतियां इसी के अंतर्गत आती हैं।

**१लोक-45. प्रीतीरेताः परामृश्य शास्त्रतः शास्त्रलक्षणाः। यो यथा वर्तते भावस्तं तथैव प्रयोजयेत्॥**

अर्थ- जो स्त्री और पुरुष कामशास्त्र के बारे में जानकारी रखते हैं उनको चाहिए कि इन चारों तरह की प्रीतियों को शास्त्र में बताए गए तरीकों से समझकर स्त्री, पुरुष के और पुरुष, स्त्री के भावों के अनुसार इस तरह का बर्ताव करें कि उनमें आपस में प्रीति बढ़ती जाए।

वात्स्यायन ने यह सब उन लोगों के बारे में बताया है जिनकी सोच साधारण किस्म की होती है। उनके अनुसार अभ्यास के द्वारा, विचार करने से, याद रखने से तथा विषयों से स्त्री और पुरुष में आपसी प्रेम को बढ़ाया जा सकता है।